जीवन
और
उसका विकास

यौवन और उसका विकास

[काम-विज्ञान की उन प्रारम्भिक और ज्ञातव्य बातों पर विचार, जिनकी जानकारी के बिना नवयुवक निरन्तर ख़तरों में पड़कर अपने शरीर और स्वास्थ्य का नाश करते हैं]

लेखक

'विवाह और प्रेम' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ के रचयिता

बाबू केशवकुमार ठाकुर

प्रकाशक

साहित्य-मन्दिर, दारागञ्ज, प्रयाग

प्रथमवार | मई सन् १९३० | मूल्य सादी प्रति का ॥।) सजिल्द १।)

भूमिका

इटली के सच्चे देशभक्त मेज़िनी का कथन है कि किसी देश का भविष्य उसके नवयुवकों पर ही निर्भर होता है। जिस देश के नवयुवक बलहीन होते हैं, वह देश कभी उन्नति नहीं कर सकता। आज भारतवर्ष में एक महान संग्राम छिड़ा हुआ है। प्रत्येक देशवासी की आँखें स्वराज्य-प्राप्ति की ओर लगी हुई हैं। परन्तु यदि एक बार यहाँ के नवयुवकों के जीवन की ओर दृष्टि डाली जाय तो शोक और पश्चात्ताप से लज्जित होना पड़ता है, और सारी आशाओं पर पानी फिरता नज़र आता है। जिस आयु में उनको शक्तिशाली और बलवान होना चाहिये, उसी में वे मुर्दों से भी बदतर दिखलाई पड़ते हैं। यदि आप एक बार किसी कालेज या स्कूल के विद्यार्थियों को देखें तो आपको मेरे इस कथन की सचाई मालूम हो जायगी। जहाँ नवयुवकों को सिंह के समान पराक्रमी और बलवान् होना चाहिये, आजकल निर्बल, आँखें घुसी हुई, तेजहीन और कापुरुष दिखलाई पड़ते हैं। देशोत्थान में नवयुवकों की यह अधोगति एक बहुत बड़ी बाधक है। इसके कारण क्या हैं? कारण तो इसके कई हो सकते हैं। परन्तु एक मुख्य कारण ब्रह्मचर्य्य का अभाव है। कोई समय था, जबकि इस देश में एक ऐसी प्रणाली थी जिससे नवयुवकों को किशोर अवस्था में ब्रह्मचर्य्य और उसके गुणों का पर्य्याप्त ज्ञान करा दिया जाता था। परन्तु देश के दुर्भाग्य से अब ऐसी शिक्षा देना व्यभिचार फैलाना कहा जाता है। यौवन के पूर्व, इसी किशोर अवस्था में कामोद्रेक उत्पन्न होना आरम्भ होता है। यही समय है जबकि उनको काम-विषय की पूरी पूरी बातें बतला देनी चाहिये। यदि उनको इस अवस्था में इन सब बातों का ज्ञान नहीं होता तो उनको बड़ी-बड़ी

हानियाँ उठानी पड़ती हैं। यही अवस्था है जबकि जननेन्द्रियों का बढ़ना और परिपक्व होना आरम्भ होता है। यही अवस्था है जबकि वीर्य उत्पन्न होकर पकने लगता है। यदि नवयुवकों या नवयुवतियों को इस समय इसकी शिक्षा न दी गई तो निश्चय है कि वे बुरी संगत में पड़कर जननेंद्रियों का दुरुपयोग करके अपरिपक्व वीर्य का स्खलन करना आरम्भ कर देंगे, जिनसे उनके शरीर का सत्यानाश हो जायगा।

मेरा सम्पर्क सात वर्ष की प्रैक्टिस में ऐसे-ऐसे नवयुवकों से हुआ है जिनका हाल सुनकर सिवाय लज्जा और शोक के कुछ नहीं सूझता। मेरा अपना अनुभव मुझको बतलाता है कि ये सारे के सारे नवयुवक काम-विषय के अज्ञान के ही कारण, किसी न किसी कुटेव में पड़कर, अपने शरीर और स्वास्थ्य का नाश करते हैं। संसार में इसके विषय में मुख्य मुख्य दो मत हैं। पहला मत तो यह है कि काम-विषयक बातों का, अपनी सन्तान को, समयानुसार बतलाना उनको व्यभिचारी बनाना है। दूसरा मत इसके बिलकुल विपरीत है। मेरी गणना भी इसी श्रेणी में है। स्वामी विवेकानन्दजी ने एक स्थान पर कहा है

"Of all the forces that have worked and are still working to mould the destinies of human race, none certainly is more potent than the manifestations of laws of Nature; and no search has been dearer to the human heart as the study of stupendous phenomena of Nature."

अर्थात् "मनुष्य मात्र के भाग्य निर्धारित करने के लिए जो जो बातें मालूम हुई हैं उनमें से प्राकृतिक नियमों के रहस्य समझने के समान और कोई दूसरी बात श्रेष्ठ नहीं है। मनुष्यों

के लिए प्राकृतिक नियमों के ज्ञान और अन्वेषण से अधिक और कोई वस्तु प्रिय नहीं है।"

क्या उपर्युक्त कथन में भी किसी को शंका हो सकती है? बच्चा जब पैदा होकर बड़ा होता है, तब माता-पिता उसको खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने और चलने-फिरने का ज्ञान कराते हैं। फिर क्या कारण है कि उनके किशोर अवस्था प्राप्त करने पर उनको काम-विज्ञान की शिक्षा न दी जाय? क्या कोई बच्चा बिना शिक्षा दिये हुए अपने माता-पिता के समान सारे नियमों का पालन कर सकता है? यदि नहीं कर सकता तो यह कैसे आशा की जा सकती है कि वह बड़े होने पर बिना बतलाये हुए ब्रह्मचर्य्य का पालन कर सकेगा? मेरा विश्वास है कि हमारा समाज बहुत धोखे में पड़ा हुआ है। जिन बालकों को वह अच्छा और सदाचारी समझ रहा है, यदि उनके भीतरी जीवन का अध्ययन किया जाय तो उसकी आँखें खुल जायँगी। उसका यह अन्धविश्वास कि ऐसी शिक्षा नवयुवकों को व्यभिचारी बनाती है, उसको और साथ-साथ इस देश को भी रसातल की ओर लिये जा रहा है।

चार्ल्स डारविन एक स्थान पर कहता है :—

Man sees with scrupulous care the character and pedigree of his horse, cattle and dogs before he matches them; but when he comes to his own marriage, he rarely, or never takes such care.

अर्थात् मनुष्य अपने पशुओं को जोड़ा खिलाने के पूर्व उनके नस्ल और जाति का पूरा-पूरा विचार कर लेता है; परन्तु जब अपने और अपनी सन्तानों के विवाह का समय आता है तब वह इन बातों पर बिल्कुल ध्यान नहीं देता।"

कितना सत्य कथन है? यदि मनुष्यों को विवाह-सम्बन्धी नियमों का पूरा-पूरा ज्ञान होता तो आज समाज के अन्दर जितने

दुराचार फैले हुए हैं वे कभी नज़र न आते।

इसी बात को लक्ष्य करके यह पुस्तक लिखी गई है। इस पुस्तक के लेखक महाशय ने ऐसे नाज़ुक विषय पर लिखते हुए भी सारी पुस्तक में सुरुचि का बहुत ही ध्यान रक्खा है, जिसके लिए वे मेरे तथा पाठकों की बधाई और प्रशंसा के पात्र हैं। क्योंकि ऐसे विषयों पर लेखनी उठाते हुए बहुत कम मनुष्य सुरुचि का ध्यान रख सकते हैं और यदि वे ऐसा करना भी चाहते हैं तो उनको बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। शायद कुछ लोग मेरे इस विचार से सहमत न हों; इसलिए मैं उनको कुरुचि और सुरुचि-पूर्ण साहित्य की परिभाषा अपने मतानुसार बतलाता हूँ। मैं तो कुरुचि-पूर्ण साहित्य उस साहित्य को कहूँगा जिसके पठन-पाठन से पाठकों तथा श्रोताओं में कामोत्तेजना और कुभाव उत्पन्न हों। इस श्रेणी में बहुत सी पुस्तकें गिनाई जा सकती हैं। परन्तु इस स्थान पर मैं उनकी सूची देना अनुचित समझता हूँ। सुरुचि-पूर्ण साहित्य इसके बिल्कुल विपरीत है। मैंने विशेषतः इसी बात का ध्यान रखते हुए सारी की सारी पुस्तक पढ़ डाली है और मेरा विश्वास है कि इस पुस्तक भर में एक भी वाक्य ऐसा नहीं है जो कुरुचि-पूर्ण कहा जा सके। मैं उन लोगों को चैलेञ्ज करता हूँ जिनको इस पुस्तक के भीतर कुरुचि का आभास होता है, वे आगे आवें और अपनी बात की पुष्टि में प्रमाण दें। पुस्तक बहुत ही सुचारु रूप से लिखी गई है और प्रत्येक व्यक्ति निस्संकोच भाव से इसको अपनी संतान को पढ़ने के लिए दे सकता है।

पुस्तक कई अध्यायों में बिभाजित है। सभी अध्याय नवयुवकों के पढ़ने तथा मनन करने योग्य हैं। "कामेन्द्रिय—उसका संरक्षण तथा संवरण" अध्याय में लेखक महाशय ने स्वप्नदोष के बारे में जो कुछ लिखा है उससे मैं अक्षरशः सहमत नहीं हूँ। एक

स्थान पर लेखक महाशय ने लिखा है कि "स्वप्न-दोष आचरणहीन युवकों और पुरुषों में ही अधिक पाया जाता है। यदि उनकी मानसिक प्रवृत्तियाँ पवित्र और शुद्ध रहें तो स्वप्न-दोष उन्हें कभी नहीं हो सकता।" मेरा ख़याल है कि यह एक सीमा तक ठीक नहीं है। सदाचारी और बलिष्ठ पुरुषों को भी स्वप्न-दोष हो सकता है।

स्वप्न-दोष की बाबत बहुत सी कुधारणाएँ पुरुषों—विशेषकर नवयुवकों में—पायी जाती हैं। लोगों का ख़याल है कि हर स्वप्न-दोष में वीर्य का स्खलन होता है परन्तु ऐसी बात नहीं है। अधिकतर स्वप्न-दोष में वह तरल पदार्थ स्खलित होता है। जिसके अन्दर वीर्य-कीट (Spermatozoa) तैरते हुए पाये जाते हैं। वीर्यकोष तथा मल-प्रनाली (Rectum) के बीच में एक ग्रन्थि होती है जिसको Prostate gland कहते हैं। जिस समय किसी विशेष कारण से इसमें उत्तेजना उत्पन्न होती है उस समय वह एक प्रकार का तरल पदार्थ उत्पन्न करती है। यह वही तरल पदार्थ है जो स्वप्न-दोष के साथ लिंगेन्द्रिय द्वारा बाहर आता है। उत्तेजना का विशेष कारण कोष्ठ-बद्धता (Constipation) है। जिन लोगों कोसदा क़ब्ज़ रहा करता है उनको स्वप्न-दोष बहुत हो जाया करता है।

मैंने देखा है कि नवयुवक इस स्वप्न-दोष से अत्यधिक घबरा जाते हैं। उनका हाल वही लोग जान सकते हैं जिनका उन नवयुवकों से वास्ता पड़ता है। मेरा ख़याल है कि अस्सी प्रतिशत वे नवयुवक, जो हकीम, डाक्टर या वैद्य के औषधालयों की हाज़िरी बजाते हैं, इसी स्वप्न-दोष के उपचार के लिए जाते हैं; और वहाँ से बिना समझे-बूझे इश्तिहारी दवाइयाँ लेकर अच्छे होने के बजाय और अधिक कष्ट भोगते हैं। मेरा तो ख़याल है कि इश्तिहारबाज़ वैद्य, हकीम या डाक्टर नवयुवकों को इसकी

दवा देकर उनके प्रति बहुत बड़ा अन्याय कर रहे हैं। समाज के प्रति वे इसके उत्तरदायी हैं। मेरा तो अपना सिद्धान्त है कि मैं सिवाय नवयुवकों को स्वप्न-दोष का पूरा-पूरा हाल बतलाने के कभी भी कोई दवा नहीं देता। दवायें इसके लिए बिलकुल अनुपयोगी हैं। नियम से रहना और ऐसे उपाय करना, जिससे क़ब्ज़ बिलकुल न रहे, इस दोष को बिल्कुल निर्मूल कर देता है। स्वप्न-दोष कोई बीमारी नहीं है। स्वप्न-दोष के निर्मूल करने का सबसे अच्छा उपाय मैं नीचे लिखता हूँ।

(१) मन को शुद्ध रखना—बुरे विचारों का न आने देना।

(२) रोज़ प्रातःकाल स्नान और व्यायाम करना।

(३) सन्ध्या के भोजन में गरम चीज़ें, मिरचा, तेल इत्यादि तथा गरिष्ट पदार्थ का सेवन न करना।

(४) भूख से अधिक न खा लेना।

(५) रात्रि में मूत्र-परित्याग करके सोना।

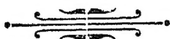
ये उपाय ऐसे हैं कि जिनसे स्वप्न-दोष की शिकायत बहुत कम हो जायगी। परन्तु यदि इन सब बातों के करते हुए भी अविवाहित नवयुवकों तथा उन विवाहित पुरुषों को, जो अपनी स्त्रियों से पृथक् हैं, स्वप्न-दोष कभी-कभी हो जाय, तो वह कदापि रोग नहीं है और उसके लिए किसी चिकित्सक के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। मुझे अब अधिक कुछ नहीं लिखना। **पुस्तक नवयुवकों के हाथ में बिना किसी संकोच के दे देनी चाहिये। इसको पढ़कर उनको उन सब बातों का ज्ञान हो जायगा जिनका जानना उनके लिए परमावश्यक है।**

बृजविहारीलाल

(बी०एस्-सी०, एमु०बी०, बी०एस्० मेडिकल आफ़िसर, दारागञ्ज।)

वैशाखबदी चतुर्थी
सं० १९८७
दारागञ्ज, प्रयाग।

अनुरोध



जीवन के बनने और बिगड़ने की नींव मनुष्य के यौवन-काल में ही पड़ती है। इसलिए जीवन-भर का समस्त उत्तरदायित्व इसी अवस्था पर निर्भर होता है। इस पुस्तक में, यौवन और उसकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओं पर प्रकाश डाला गया है, पुस्तक के प्रत्येक अध्याय में, एक-एक बात को लेकर, यह बताया गया है कि बालकों और युवकों के जीवन किस प्रकार पतित होते हैं और उनके इस पतन का उत्तरदायी कौन है ; माँ-बाप अपनी संतान को किस प्रकार साधु, सुशील, सदाचारी बना सकते हैं और किस प्रकार उनकी असावधानी सन्तान के भ्रष्ट, आचरण-हीन और पतन का कारण होती है ! जो शिष्टतापूर्ण व्यवहार माता-पिता का, संतान के साथ, होता है, वह किसी प्रकार उनकी संतान को जीवन की स्फूर्ति देने में सहायक नहीं होता। इसलिए माता-पिता का यह परम कर्तव्य होता है कि वे अपनी संतान के जीवन से परिचित हों और उसको यथाशक्ति सुपथ पर चलाने की चेष्टा करें। इसके लिए एक ही मार्ग है; और वह है संतान को माता-पिता के द्वारा काम-विज्ञान (Sexual scince) की आवश्यक बातों की जानकारी होना।

यह विषय बहुत विवाद-ग्रस्त है; किन्तु जितना वह विवाद-ग्रस्त है, उससे भी कहीं अधिक वह पवित्र है। यह विषय क्या है, उसमें किस प्रकार के मतभेद हैं, यह सब पुस्तक में भली प्रकार दिखाया गया है। इसलिए उसको यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं है। हमारा विश्वास है कि इस विषय की जानकारी के बिना

संसार में कोई भी ऐसा मंत्र नहीं है, जो बालकों और युवकों को सुरक्षित रख सके। पता नहीं, जो लोग इसका विरोध करते हैं वे बालकों और युवकों को क्यों अन्धकार में रखना चाहते हैं! यह अंधकार दिन-पर-दिन क्षीण होता जाता है और वे दिन निकट हैं, जब मानव समाज, बिना किसी संकोच और दुर्भावना के, जीवन के प्राकृतिक रूप को पवित्रता से साथ स्वीकार करेगा। और उन दिनों इस अंधकार के विस्तार करनेवालों की चर्चा इतिहास के पन्नों में मिला करेगी !!

समाज बात-की-बात में "पाप-पाप" कहकर चीत्कार कर उठता है; पर हमें आज तक नहीं मालूम, वह पाप क्या है! प्राकृतिक और अप्राकृतिक जीवन की अधिक-से-अधिक छान-बीन करने के बाद, हम केवल इस नतीजे तक पहुँचे हैं कि पाप परदे का नाम है! जहाँ परदा है, वहीं पाप है! जहाँ परदा नहीं है, वहाँ पाप नहीं है !! पाप की इससे अधिक सुन्दर परिभाषा हमें नहीं मालूम !!!

पुस्तक के विषय के विरोधी जब इस विषय की निन्दा करेंगे तो वे एक प्रकार से सत्य की हत्या करेंगे! इससे अधिक अच्छा यह होगा कि वे इस विषय का समर्थन करके लेखक की त्रुटियों और दुर्बलताओं की विवेचना करें। हम तो पहले ही से यह स्वीकार करते हैं कि विषय जितना ऊँचा और पवित्र है उतनी हमारी शक्तियाँ ऊँची और पवित्र नहीं हैं। अधिक-से-अधिक संयत भाषा और भावों में, हमने विषय-विवेचन की चेष्टा की है; फिर भी जो कुछ पुस्तक में त्रुटियाँ रह गयी होंगी, उनका एक मात्र कारण हमारी निर्बलता होगी।

इस नाते से लेखक और पुस्तक दोनों ही अपनी त्रुटियों और दुर्बलताओं के लिए क्षमा के योग्य हैं। जो उदार आलोचक और प्रत्यालोचक, अपनी सत्सम्मतियों से अनुगृहीत करेंगे, उनके

अनुसार, पुस्तक के अगले संस्करण में यथावश्यक सुधार कर दिये जायँगे।

यदि हम भूल नहीं करते, तो इस विषय में हिन्दी-भाषा में यह पहली ही पुस्तक होगी। अँगरेज़ी में इस प्रकार का साहित्य अधिक लिखा जाचुका है। यहाँ पर यह लिख देना आवश्यक है कि अँगरेज़ी की कई एक पुस्तकों का अध्ययन करके यह पुस्तक लिखी गयी है। इसी नाते Confidential talks with Youngmen नामक अँगरेज़ी पुस्तक के लेखक के हम विशेष रूप से अनुगृहीत हैं।

पुस्तक के भूमिका-लेखक हैं इलाहाबाद के एक प्रसिद्ध डाकृर बाबू ब्रजबिहारीलालजी बी० एस्०-सी०, एम्० बी० बी० एस्०। डाकृर साहब न केवल एक प्रसिद्ध डाकृर हैं, वरन आप सच्चे देशभक्त और हिन्दी-साहित्य के विशेष प्रेमी हैं। डाकृरसाहब जैसे प्रतिभा-शाली व्यक्ति का भूमिका-लेखक होना, इस पुस्तक के लिए सर्वथा सौभाग्य की बात है। यह संतोष की बात है कि डाकृर साहब ने पुस्तक के विषय की महत्ता और उपयोगिता को स्वीकार किया है। एक स्थल पर आपने स्वप्न-दोष के सम्बन्ध में लेखक से मत-भेद प्रकट किया है। डाकृरसाहब के मतभेद को पढ़ने के बाद हमने पुस्तक के उस अंश को एक बार फिर पढ़ा है। अस्तु। डाकृरसाहब से अत्यन्त श्रद्धा और शिष्टता के साथ निवेदन है कि उस त्रुटि पर जो आपने अपना आशय प्रकट किया है, ठीक वही आशय, पुस्तक के पृष्ठ १०४ के दूसरे पैराग्राफ़ में दिखाया गया है। हमारा विश्वास है कि डाकृरसाहब का आशय वहाँ पर भली प्रकार व्यक्त किया जा चुका है।

बालकों, युवकों और अपनी संतान का उपकार चाहनेवाले व्यक्तियों से अत्यन्त विनम्र शब्दों में प्रार्थना है कि वे इस पुस्तक को एक बार आदि से अन्त तक गम्भीरता-पूर्वक पढ़ने का प्रयास

करें और उसके बाद इस बात का निर्णय करें कि यह पुस्तक उनके जीवन को ऊँचा उठाने में उनका कुछ साथ देती है या नहीं। यहीं पर लेखक के परिश्रम की सफलता और असफलता का निर्णय होता है।

केशव-कुटीर, कानपुर
२० । ४ । ३०

केशवकुमार ठाकुर



यौवन और उसका विकास

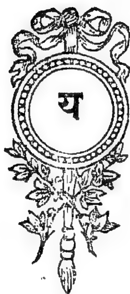
यौवन

और

उसका विकास



यौवन के पूर्व



ह मानी हुई बात है कि बालक और बालिकाओं तथा युवक और युवतियों को काम की शिक्षा नहीं दी जाती। इस अवस्था में वे इसके सम्बन्ध में क्या सीखते हैं, इसका यहाँ पर विचार करना है।

लोगों का विचार है कि काम-विषयक शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं होती; समय और अवस्था के अनुसार उसका ज्ञान स्वयं हो जाता है। यह

बात कहाँ तक ठीक है और उसका परिणाम क्या होता है, यह विशेषरूप से जानने की बात है।

समाज में कुछ ऐसे लोग पाये जाते हैं, जो अप्राकृतिक व्यभिचार के अभ्यासी होते हैं। स्त्री-पुरुष का सहवास तो प्राकृतिक है, और संसार में सर्वत्र व्यवहृत होता है। किन्तु कुछ इस प्रकार के लोग भी होते हैं जो छोटे बालकों के साथ व्यभिचार करते हैं। यह व्यभिचार अप्राकृतिक और अमानुषिक है। इस प्रकार के पुरुष स्त्रियों से घृणा करते हैं और इस घृणा का फल यह होता है कि उनकी पत्नियों को पति के इन पापाचरणों के कारण आजन्म रोना पड़ता है। इन पुरुषों का स्त्रियों से घृणा करने का एक कारण यह भी है और कि वे स्त्री-सहवास में सर्वथा अनुपयुक्त होते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति किशोरवय बालकों को अपने चंगुल में फांसा करते हैं। उनसे प्रेम करते हैं और उस प्रेम के बड़े सुहावने चित्र खींचा करते हैं। जो बालक इनके जाल में फँसते हैं, वे उन पुरुषों की विषय-वासनाके साधन बनते हैं। उन व्यभिचारी पुरुषों का यह प्रभाव पड़ता है कि ये बालक उसी प्रकार के अप्राकृतिक व्यभिचार अपने से छोटी आयु के बालकों के साथ किया करते हैं। यह अस्वाभाविक अभ्यास आजीवन उनका साथ नहीं छोड़ता।

जब बालकों का आचरण भ्रष्ट हो जाता है, तो वह धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। और यहाँ तक बढ़ जाता है कि वे अपने वीर्य को किसी न किसी प्रकार निकालकर क्षणिक सुख का अनुभव करते हैं। उनकी मानसिक कुप्रवृत्ति अत्यन्त पतित हो जाती है। कामो-

त्तेजना के पश्चात् वीर्यपात होने में वे आनंद का अनुभव करते हैं। इसलिए जब उनको व्यभिचार का कोई साधन नहीं मिलता तो वे अपने हाथ के द्वारा अपनी इन्द्रिय में कामोत्तेजना उत्पन्न करते हैं और मैथुन की ठीक अवस्था अनुभव करते हुए वीर्य स्खलित करते हैं। इसमें उनको क्षण भरके लिए सुख तथा शान्ति मिलती है। इस प्रकार के युवक एकान्तप्रिय हुआ करते हैं। वे सबके समीप भोले-भाले और सरल के स्वभाव जान पड़ते हैं। परन्तु वास्तव में वे सब से अधिक आचरणहीन होते हैं। ये दो अवगुण, जो ऊपर दिखाये गये हैं, स्कूल के विद्यार्थियों में विशेषकर पाये जाते हैं। इस प्रकार के बालकों और युवकों की संख्या अस्सी और कहीं-कहीं नब्बे प्रति शत तक पायी जाती है। जिनमें ये अवगुण उत्पन्न हो जाते हैं, वे अपने इन अवगुणों के साथ ही जीर्णशीर्ण और कृशकाय हो जाते हैं, उनके शरीर का रक्त सूख जाता है, मुख पीला और रक्तहीन हो जाता है। उनके मुख-मण्डल का बाल-सौन्दर्य नष्ट होजाता है। जिन बालकों और युवकों में इस प्रकार के दुर्व्यसन उत्पन्न हो जाते हैं, उनके शरीर और तेजहीन मुख को देखकर तुरन्त पहचाना जा सकता है। माँ-बाप अपने बालकों की ये अवस्थाएँ देखते हैं; परन्तु वे समझा करते हैं कि स्कूल के पढ़नेवाले लड़के दुबले-पतले तो होते ही हैं। जब कभी इस प्रकार के बालकों और युवकों से बातें की जाती हैं और कोई उनके इस अस्वास्थ्य का कारण पूछता है, तो बिना किसी संकोच के वे लोग उत्तर दे देते हैं---आजकल पढ़ने में अधिक परिश्रम करना पड़ता है!

बालकों और युवकों को गाने का बड़ा शौक़ होता है। जहाँ कहीं गाना-बजाना होता है, वे अवश्य सुनने जाते हैं। इस संगीत-प्रियता के कारण ही वे नाच, स्वाँग, नाटक, रास और थियेटर देखते हैं। इन सब स्थलों में इश्क़ पैदा करनेवाले दृश्य होते हैं। उनके प्रेमिक और प्रेमिका के जीवन, उनमें संयोग और वियोग के दृश्य, दर्शकों पर प्रभाव डालते हैं। व्यभिचार बढ़ानेवाली ये सब औषधियाँ हैं और उनके आसक्ति-पूर्ण गाने उन औषधियों के अनुपान ये सब बातें युवकों में व्यभिचार उत्पन्न करती हैं और कामोत्तेजना की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करती हैं। बालक और युवक उन स्थलों में जाकर जो दृश्य देखते हैं, उनको अपने जीवन में चरितार्थ करने की चेष्टा करते हैं और सफल भी होते हैं। वे अपने अप्रकाश्य जीवन में, समाज के नेत्रों से अप्रकट रहकर, प्रेमिक और प्रेमिका का जीवन व्यतीत करते हैं और विषय-भोग की अत्यन्त कुत्सित और बीभत्स अवस्थाओं तक पहुँचते हैं।

साधारण समाज में अश्लील और गंदे भाव उत्पन्न करनेवाली पुस्तकों की पहुँच अधिक रहा करती हैं। उन अश्लील पुस्तकों का प्रभाव बालकों और युवकों की प्रवृत्ति पर बहुत अधिक पड़ता है। इसके अतिरिक्त कुछ पुस्तकें भी, जो उच्च कोटि की साहित्यिक समझी जाती हैं, युवकों की प्रवृत्ति को काम-वासना की ओर आकर्षित करती हैं। इन पुस्तकों का प्रभाव कभी भी आचरण को सन्मार्ग की ओर ले जाने के लिए नहीं हुआ करता। साहित्य में जो उपन्यास उच्च कोटि के स्वीकार किये जाते हैं, वे भी पाठकों के मनो-

भावों पर आसक्ति का प्रभाव डालते हैं और पढ़नेवाले बालक-बालिकाओं तथा युवकों और युवतियों पर प्रेम का बीजारोपण करते हैं। ये समस्त दृश्य विवाह के पूर्व ही हो जाते हैं। प्रेम-वासना व्यभिचार की प्रथम सीढ़ी है, इससे कोई भी व्यक्ति इनकार नहीं कर सकता। जो युवक और युवती विवाह के पूर्व ही प्रेमिक और प्रेमिका का जीवन बिता चुकती हैं, जो युवक किसी युवती के लिए एवम् जो युवती किसी युवक के लिए वियोगव्यथा का अनुभव कर चुकती है, वह एक वियोग के पश्चात् दूसरे संयोग की प्रतीक्षा करती है। और इस प्रकार नित्य नवीन प्रेम करने की अभ्यासिनी हो जाती है। यह वैवाहिक जीवन का व्यभिचार है जिसके द्वारा स्त्री-पुरुष का सुख-संतोष सदा के लिए नष्ट होता है। जीवन की किसी घटना का यह दुष्परिणाम न उत्पन्न होने पाये, इसीलिए हिन्दुओं में किशोर अवस्था में ही विवाह की प्रथा थी। किन्तु समय के संयोग से उस प्रथा का मनमाना दुरुपयोग हुआ। इस प्रकार व्यभिचार के बढ़ाने में कुछ पुस्तकों का भी हाथ है, उनमें से कुछ तो प्रत्यक्ष इस विष-मय जीवन की प्रवर्त्तक हैं और कुछ अत्यंत सूक्ष्म रूप में!

बालक और बालिका को माँ-बाप काम की शिक्षा इसलिए नहीं दे सकते कि उनको जीवन की यह अप्रकाश्य बातें कहीं मालूम न हों, किन्तु उनको नहीं मालूम कि हमारी संतान अपने घर पर ही व्यभिचार के पाप-काण्ड को देखकर सब कुछ सीखती हैं। माँ-बाप तथा घर में विवाहित स्त्री-पुरुष प्रायः बड़ी असावधानी से काम लेते हैं। वे कभी-कभी कामान्ध हो जाते हैं और इतनी असावधानी का

व्यवहार करते हैं कि उनका, घर के वयप्राप्त लड़की-लड़कों पर, अत्यंत कुत्सित प्रभाव पड़ता है।

जो माँ-बाप अर्थ-सम्पन्न होते हैं, उनके बालकों को रुपये-पैसे की अधिक सुविधा रहा करती है। जिस वायु-मंडल में वे अपना जीवन अतिवाहित करते हैं, उसमें उनको काम-प्रवृत्ति के जागरित करनेवाले अधिक से अधिक जीवन मिलते हैं। उनके मन चंचल होते हैं। आर्थिक असुविधा भी उनके सामने नहीं होती। फल यह होता है कि वे व्यभिचारी और आचरण-भ्रष्ट हो जाते हैं। इन पतित नवयुवकों को जब कामप्रिय पुरुषों का सहयोग और सम्पर्क मिल जाता है तो वे अपने नेत्रों को मूँदकर अपनी जीवन-शक्ति खूब नष्ट करते हैं!

यह समाज की अवस्था है—समाज में बालकों और नवयुवकों का यह जीवन है! अब सोचने की बात यह है कि शत प्रति शत बालक और युवक इस प्रकार आचरणभ्रष्ट हो जाते हैं! जो अवस्था उनके वीर्य की परिपक्वता की होती है, उसमें ही वह व्यय होने लगता है और अत्यन्त पतला पड़ जाता है। वीर्य के द्रवीभूत होने से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ये सभी आचार-भ्रष्ट बालक और युवक इन रोगों के शिकार होते हैं। कुछ तो इस प्रकार की पतित अवस्था को पहुँचते हैं जिसका वर्णन करना और बताना कठिन है। जिनको प्रमेह की बीमारी हो जाती है, वे आजन्म स्त्री-सहवास के अयोग्य हो जाते हैं। यह बीमारी जिन्हें होती है, वे सहज में अच्छे नहीं होते। और यदि प्रारम्भिक अवस्था में उसकी उचित चिकित्सा

न हुई और उन बालकों और युवकों का आचरण शुद्ध न हुआ तो उनका समस्त जीवन निकम्मा और पुरुषार्थ-हीन हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य बीमारियाँ और भी भयंकर हैं, जैसे गर्मी और सूज़ाक। इन बीमारियों के रोगियों को आगे चलकर किस प्रकार निराश जीवन बिताना पड़ता है, यह वही जानते हैं जिन्हें दुर्भाग्य से इनका भोग करना पड़ा है! बालक और युवक इन रोगों के उत्पन्न हो जाने पर, लज्जा के कारण, किसी से प्रकट नहीं करते। वे कष्ट सहते हैं—उसकी पीड़ा को किसी प्रकार सहन करते रहते हैं; परन्तु अपने माँ-बाप तथा परिवार के गुरुजनों से कभी प्रकट नहीं करते। फल यह होता है कि उनकी वह बीमारी इतनी पुष्ट हो जाती है कि फिर उसका अच्छा होना साधारण काम नहीं रह जाता। उनके माँ-बाप को उनकी इन बीमारियों का पता तब लगता है जब वैद्य, हकीम और डाक्टर उनकी अवस्था को असाध्य कहकर निराशा प्रकट करते हैं! इन दुष्कर्मों का फल यह होता है कि वे जीवन भर चिकित्सा करते रह जाते हैं, पर कभी अच्छे नहीं हो पाते।

इन सब पतित बालकों और युवकों को किसी-न-किसी रोग में अवश्य पड़ना होता है। किसी को धातु-क्षीणता का रोग होता है, किसी को प्रमेह की बीमारी होती है और किसी को गर्मी-सूज़ाक का शिकार होना पड़ता है। जब तक विवाह नहीं होता, उनकी वे अवस्थाएँ उन्हीं तक निर्भर रहती हैं। उनके उन रोगों का परिणाम यदि माँ-बाप को मालूम हो गया तो कुछ चिंता में वे भी भाग ले लेते हैं; परंतु ये बातें माँ-बाप के कानों तक नहीं पहुँचतीं

वे अनुभवहीन बालक और युवक स्वयं उसकी चिकित्सा करते हैं। अपनी चिकित्सा और चेष्टा में विफल होने पर भी वे अपने माँ-बाप से कुछ नहीं कह सकते। वे जानते हैं कि इन रोगों के प्रकट होने से हमारे दुष्कर्मों का भंडाफोड़ होगा। इसीलिये वे अपने माँ-बाप के निकट साधु सुशील बने रहने का प्रयत्न करते हैं।

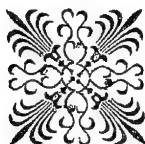
इन रोगियों के विवाह हो जाने पर उनके पूर्व पापों का परिणाम और भी भीषण रूप में देखने में आता है। जिन बातों की कभी उन्होंने आशंका भी नहीं की—जिन बातों की कभी उन्हें सम्भावना भी न थी, वे सब एक साथ उनके सामने आती हैं। उनके शरीर दिन-पर-दिन निर्बल, स्वास्थ्यहीन और पीले होते जाते हैं। आफ़िसों में नौकरी करनेवाले बाबुओं को तो चाहे कभी अपने आफ़िस-कार्य से छुट्टी भी मिले; परन्तु इन रोगियों को नित नयी बीमारियों से कभी छुट्टी नहीं मिलती! यह उनका साधारण जीवन हो जाता है। उनकी अवस्थाओं का यहीं पर अंत नहीं हो जाता। उनके विवाह होते हैं और बड़ी धूम-धाम से होते हैं। परन्तु इन बालकों और युवकों की क्या अवस्था होती है यह आगे चलकर वे बालक और युवक ही जानते हैं। अधिक स्पष्ट कहना निर्लज्जता है; परन्तु समाज की जब उस अवस्था को ही यहां चित्रित करना है, तो फिर संकोच किस बात का! कहना यह है कि ये बालक और युवक वास्तव में विवाह के लिए योग्य नहीं होते। वे स्त्री-सहवास के सर्वथा अनुपयुक्त होते हैं! जिन बालिकाओं और युवतियों का उनके साथ विवाह-

सम्बन्ध होता है, उनका भाग्य फूटता है ! उनका जीवन नष्ट होता है !! यह भारतवर्ष है जहाँ, पुरुष, चाहे वह कैसा भी क्यों न हो। विवाह कोई रोक नहीं सकता ये बालक और युवक तो भला मनुष्य देहधारी होते हैं, पर विवाह तो इस देश में उनके भी हो सकते हैं, जो मिट्टी से निर्माण किये गये हों ! केवल धन चाहिए, कुल चाहिए, उसके बड़प्पन के कुछ दिखाव चाहिए, तब फिर और किसी बात की आवश्यकता क्या है ? और जिस बात की आवश्यकता है, उसकी आवश्यकता को कौन अनुभव करता है ! परिणाम यह होता है कि इस प्रकार का वैवाहिक जीवन न तो पुरुष के लिए सुख-संतोषकर होता है और न स्त्री के लिए। जो युवतियाँ यौवन-मदमाती, विवाह के पश्चात् पति के घर आती हैं, वे अपने पतियों के दुष्कर्मों का इतिहास कुछ दिन पीछे जानती हैं और जानती हैं उस समय जब तरुण अवस्था में उनकी कामपिपासा अतृप्त रहती है ! उस जीवन में पुरुष अपने पूर्व जीवन के अभ्यासी होने के कारण अपने दुष्कर्मों से परे नहीं रहते। कदाचित् उनको उन्हीं में संतोष और आनन्द आता है। फल यह होता है कि पुरुष की यह व्यभिचार-प्रवृति स्त्री में व्यभिचार की भावना उत्पन्न करती है। इस प्रकार समाज में स्त्री-व्यभिचार की कुप्रवृत्ति उत्पन्न होती है और स्त्री-समाज कुलटा के नाम से पुकारा जाता है ! कौन जानता है कि इन दुरवस्थाओं का प्रारम्भ कहाँ से और कब हुआ था ! यह पाप दिन-पर-दिन बढ़ता है और समाज को निर्बल, असहाय एवम् अधःपतित बनाता है !

पुरुषों को अपनी तरुण अवस्था के पश्चात् जिन दुरवस्थाओं को भोगना पड़ता है, उन अवस्थाओं की वे पहले कभी आशंका भी नहीं करते। उनको नहीं मालूम होता कि आगे चल कर हमारे जीवन का क्या दृश्य होगा। काम-शिक्षा इन दुरवस्थाओं से रक्षा करती है। उसका यही काम होता है कि भविष्य में क्या क्या संकट भोगने होते हैं, उनका ज्ञान करावे और काम की यथोचित उपयोगिता की जानकारी उनमें उत्पन्न करे। जो व्यक्ति काम-वासना से बालकों और युवकों को पृथक रखना चाहते हैं, वे आँखें खोलकर ये दृश्य देखें। वे देखें कि ये दृश्य कितने भयानक होते हैं! और वे लोग भी आँखें खोलकर इन परिणामों को देखें, जो सोचते हैं कि इस विषय की शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं हुआ करती! यह दुष्परिणाम हैं काम-विज्ञान से अपरिचित होने के!! नवयुवकों के इन दुष्परिणामों से सचेत होने के लिए अँगरेज़ी में एक पुस्तक है। उसका नाम है Confidential talks to young men उसके लेखक ने इस प्रकार की कुछ बातों का अनुभव करते हुए लिखा है—Masturbation, sodomy and prostitution are its dangerous results. Beware of parents, beware of this demon devouring your children of tender age. "समाज के जिस कुत्सित जीवन से बालकों और युवकों का सम्पर्क रहा करता है, उसके फलस्वरूप समाज में एकान्त पाप, अप्राकृतिक व्यभिचार और वेश्यागमन उत्पन्न होता है। माता और पिताओ, इस पापमय जीवन से सचेत होओ, और सचेत होओ

उन राक्षसी परिणामों से, जो तुम्हारे बालकों को, उनकी सुकुमार अवस्था में, नाश करते हैं !"

दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं में क्या होता है, उनमें किस प्रकार के विज्ञापनों की भरमार होती है ? नित नये वैद्यों, हकीमों और डाक्टरों के विज्ञापन बाज़ार में सड़कों पर बँटते हुए मिलते हैं, उनमें क्या है ? उनमें इन पतित पुरुषों को पुरुषत्व प्रदान करने के लिए औषधियों की सूचना होती है । सूचना होती है, धातुपुष्ट चूर्ण की, स्तम्भन-बटिका की और आनंद उत्पन्न करने वाली गोलियों की ! पतित, व्यभिचारी और कामी पुरुष, जो अपने पुरुषार्थ को खोये हुए होते हैं, इन चिकित्साओं की ओर दौड़ते हैं और जीवन-भर एक-न-एक आविष्कृत औषधि की परीक्षा किया करते हैं। यह हमारे समाज के युवकों का जीवन है ! उन अभागों को यह कोई बतानेवाला नहीं है कि ये बटिकाएँ और गोलियाँ यदि खोये हुए पुरुषार्थ को उत्पन्न कर सकतीं तो फिर संसार में काम-शिक्षा, सदाचार-शिक्षा की आवश्यकता ही न रहती !



यौवन का विकास



बचपन और किशोर अवस्था बीतने पर यौवन का आगमन होता है। बचपन में बालक संसार की बातों से अनभिज्ञ होता है, सुख-दुख, अपने-पराये, उचित-अनुचित का उसे कुछ ज्ञान नहीं होता। किशोर अवस्था में वह इस ज्ञान को प्राप्त करता है। किशोर अवस्था, यौवन के आगमन की सूचना देती है। यौवन के पूर्व, बालक की जो शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ विकसित होती हैं, यौवनावस्था में वे शक्तियाँ परिपक्व होती हैं। किशोरवय में जिन अंगों और प्रत्यंगों का परिस्फुटन और परिवर्द्धन होता है,

यौवनावस्था में उन अंगों की परिपूर्णता होती है। बचपन प्यार करने के लिए होता है, यौवन सावधानी के साथ सन्मार्ग की ओर परिचालित करने के लिए। बचपन जितना ही साधु और सुशील होता है, यौवन उतना ही चञ्चल और भयानक।

यौवनावस्था दुर्घटनाओं से भरी होती है। उसके एक-एक क्षण में दुर्घटनाएँ होने की सम्भावना होती है। जो इन दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में सचेष्ट रहते हैं, और अत्यंत सावधानी के साथ अपने इस मार्ग पर चलने का प्रयत्न करते हैं, वे कदाचित् सुरक्षित रूप से अपना यह मार्ग समाप्त करते हैं; किन्तु जिनको इस अवस्था की दुर्घनाओं का ज्ञान नहीं होता—जो अपने नेत्रों को मूँदकर इस मार्ग पर चलते हैं, वे इस मार्ग के उन खंदकों में गिरते हैं जिनसे उस जीवन में उनका निकलना असम्भव हो जाता है।

यौवन जीवन की वह अवस्था है कि मदिरा का प्रभाव होता है। इस अवस्था में इतना साहस होता है कि पृथ्वी और आकाश निकट दिखाई देता है! इसमें वह शौर्य एवम् पराक्रम होता है जिसके सामने कुछ भी असम्भव नहीं होता! यौवन के इस साहस और शौर्य के रक्षा करने की आवश्यकता होती है। इस अवस्था में इस साहस और पराक्रम को यदि संचित करके न रखा गया, तो उसका क्या परिणाम होता है, यह नव-युवकों को जान लेना बहुत आवश्यक है। इस अवस्था में संसार की बातों का कुछ अनुभव नहीं होता। इस आयु में आँखों और मनोभावों में मदिरा का आवेश होता है। इस आवेश में उचित और अनुचित सभी बातों की ओर चञ्चलता

उत्पन्न होती है। यही अवस्था होती है जब मनुष्य अपनी शारीरिक और मानसिक उन्नति करता है—यही अवस्था होती है जब मनुष्य अपने भविष्य के लिये तैयारियाँ करता है। मनुष्य जब अपनी इस अवस्था में पहुँचता है तो उसको अपने मार्ग में दो पथ दिखाई देते हैं। इन दोनों पथों में बड़ी विभिन्नता होती है। एक पथ में चलकर मनुष्य अपने जीवन में सफल होता है, दूसरे पथ में चलकर मनुष्य अपने जीवन में पथभ्रष्ट होता है। जिस मार्ग में चलकर वह जीवन में सफल होता है, उसमें उसको सुख, स्वास्थ्य और शान्ति मिलती है। जिस मार्ग में चलकर वह असफल होता है, उसमें उसको क्लेश, यन्त्रणा और जीवन की अनेक दुर्बलताएँ प्राप्त होती हैं। इस क्लेश-यंत्रणापूर्ण पथ का प्रारम्भ सुन्दर और सुहावना होता है और दूसरे पथ का प्रारम्भ कटुता और कठिनाई से भरा हुआ होता है। जहाँ से ये दो पथ प्रारम्भ होते हैं, वहाँ पहुँचकर मनुष्य विस्मित होता है। वह सोचता है, हमें किस पथ से जाना चाहिए। जिस समय वह इस सोच-विचार में होता है, उस समय उसे मार्ग-प्रदर्शक लोग मिलते हैं। उनमें से कुछ लोग उसको कटुता और कठिनता के मार्ग की ओर अग्रसर करते हैं। इस प्रकार के लोग माई-बाप और शुभचिन्तक होते हैं। कुछ लोग उसे सुन्दर और सुहावने मार्ग की ओर खींचते हैं। ये लोग पथ-भ्रष्ट, पतित और आचरणहीन मनुष्य होते हैं। उस समय बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। युवावस्था के भोलेपन में उन पथों का अनुभव नहीं होता। किसी पथ पर चलकर उसको किस परिणाम

तक पहुँचना होगा, इसका उनको कुछ ज्ञान नहीं होता। वह उस सुन्दर और सुहावने पथ की ओर अग्रसर होता है और अपने माँ-बाप, भाई-बन्धु और शुभचिन्तकों से मुख छिपाता है !

युवकों के बिगड़ने का कारण क्या है—अपने भाई, बंधु और शुभचिन्तकों की अपेक्षा दूसरों का प्रभाव उन पर पड़ने का कारण क्या है ? बालक जब किशोरवय समाप्त करके यौवन के पथ पर पैर रखता है, उस समय उसको दो प्रकार के आदमियों से काम पड़ता है। घर के लोग उसे शांत, सुशील और सदाचारी बनाना चाहते हैं; किन्तु जब वह घर के बाहर पैर रखता है तो उसे इस प्रकार के मनुष्य भी कम नहीं मिलते जो उसको कुपथ की ओर ले जाने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार के लोगों से उसे अनेक प्रकार के प्रलोभन मिलते हैं, खाने-पीने के, पहनने-ओढ़ने के ! जब वह इन बाहरी लोगों से मिलता है तो उसको इस ओर का जीवन सुगम, सुविधाजनक और प्यार से भरा हुआ मालूम होता है ; किन्तु जब घर के लोगों और अपने शुभचिन्तकों के सामने जाता है तो वह वहाँ शासन के अतिरिक्त और कुछ नहीं पाता। फल यह होता है कि वह अपने भाई, बाप और शुभचिन्तकों से मुख छिपाता है और उन आचरणहीन आदमियों के हाथों में पड़कर चौपट होता है। यौवनावस्था में युवकों और युवतियों—पुरुषों और स्त्रियों—के पतित होने का यही कारण है। और उनके जीवन में अपनों की अपेक्षा दूसरों के प्रभाव पड़ने का यही एक आधार है यौवन-काल में सन्तान के इस प्रकार पतित होने का उत्तरदायित्व बहुत

कुछ उसके माँ-बाप के ऊपर है। जब माँ-बाप इस अवस्था में अपने बालक-बालिकाओं को देखें तो वे उनके आचरणों का अध्ययन करें और उनके साथ शासन न करके इन आचरणों के दुष्परिणामों का ज्ञान करावें। उन्हें इस प्रकार की घटनाएँ सुनावें जिनसे उन बालकों और युवकों को भविष्य में आनेवाली विपदाओं के प्रति डर उत्पन्न हो। जिन आचरणहीन लोगों के संसर्ग में पड़कर वे बिगड़ते हों, माँ-बाप को चाहिए कि उस सम्पर्क से अपने बालक-बालिकाओं को तुरन्त हटा लें।

हमारा समाज अधिकांश अशिक्षित है। इस अशिक्षा का यह प्रभाव है कि बालकों के बनने और बिगड़ने से वे अपना कुछ सम्बन्ध नहीं रखते। एक बात बड़े आश्चर्य की है कि उनकी समझ में बालकों का बिगड़ना कुछ हानि नहीं रखता। वे विचार करते हैं बालिकाओं के बिगड़ने के सम्बन्ध में अपयश का और यदि उनको थोड़ा-सा अपयश का डर न हो तो कदाचित् उनके बिगड़ने की भी वे चिंता न करें ! माँ-बाप अपना कर्त्तव्य समझते हैं सन्तान उत्पन्न करना। उनकी सन्तान यदि दुराचारिणी है तो यह सन्तान के भाग्य की बात है ! यह समाज की अवस्था है ! देश का यह दुर्भाग्य है !! पता नहीं, समाज की यह दुरवस्था कब समाप्त होगी !!!

यौवन-काल में चित्त-वृत्तियाँ स्वभावतः चञ्चल होती हैं। युवकों और युवतियों में जब इस चञ्चलता के भाव मिलें, तो उन पर क्रोध न करना चाहिये, उनको दुराचारी और दुराचारिणी

समझकर उनसे कभी घृणा न करनी चाहिए। समझना यह चाहिये कि इस अवस्था का गुण ही यही है। इसलिए वे क्रोध के नहीं, दया और क्षमा के पात्र हैं। बालकों में पन्द्रह और सोलह वर्ष की आयु से यौवन प्रारम्भ हो जाता है। यौवन का विकास बालक और बालिका में समान रूप से नहीं होता। पुरुष में यौवन का जो विकास उसकी पच्चीस वर्ष की आयु में होता है, स्त्री में वही विकास उसकी सोलह वर्ष की आयु में ही हो जाता है। इसी आधार पर बालक की सोलह वर्ष की विकसित अवस्था बालिका में ग्यारह और बारह वर्ष की अवस्था में ही हो जाती है। बालक और बालिका के जीवन में यही एक प्रतिकूलता नहीं होती, यौवन के विकास की अनेक विभिन्नताएँ भी उनमें होती हैं। बालकों में जब यौवन प्रारम्भ होता है, तो उनका स्वर भारी और गम्भीर हो जाता है। उनके शरीर की हड्डियाँ चौड़ी और मोटी हो जाती हैं, उनके कंधे चौड़े हो जाते हैं। उनकी यौवनावस्था जितनी ही आगे बढ़ती है, उतने ही उनमें ये अंतर बढ़ते जाते हैं। किन्तु बालिका की यह उन्नति इससे विभिन्नता रखती है। उसकी अस्थियों का यौवनावस्था में बढ़ना रुक जाता है। इस के स्थान पर, उसके शरीर का, कटि से नीचे का भाग, भारी और चौड़ा होने लगता है और जितना ही उसके यौवन का विकास बढ़ता जाता है, उतनी ही वह सुशील एवम् शान्तिप्रिय होती जाती है। उसका स्वर पतला और मिष्ट हो जाता है। बालक में यौवन के साथ-साथ शौर्य और साहस बढ़ता है। बालिका अपने यौवन-काल के क्षण-क्षण में भय, और आशंका का अनुभव करती है। बालक

यौवन-काल में वाचाल और सार्वजनिक जीव हो जाता है, किन्तु बालिका लज्जा की सजीवमूर्ति और एकान्तप्रिय बन जाती है। बालक और बालिका की इसी प्रकार की विभिन्नता उनकी डाढ़ी और मूछ के सम्बन्ध में है। बालक के युवा होने पर डाढ़ी और मूछ निकल आती है और वह आयु के साथ-साथ बढ़ती रहती है, किन्तु बालिका में यह बात नहीं होती। पुरुष के डाढ़ी और मूछ का सम्बन्ध उसके पुरुषत्व से होता है। शरीर-वैज्ञानिकों ने निर्णय किया है कि जिन पुरुषों के डाढ़ी और मूछ नहीं आती, उनमें स्त्रीत्व के गुण पाये जाते हैं और जिन स्त्रियों में डाढ़ी और मूछ का कुछ आभास पाया जाता है, उनके व्यवहार-बर्त्ताव पुरुष के-से होते हैं। यह बात यहाँ तक प्रमाणित हुई है कि यदि किसी बालक की पुरुषेन्द्रिय का विकास रोका जाय तो उसमें यौवनावस्था में डाढ़ी और मूछ नहीं आती और यदि किसी बालिका की जननेन्द्रिय-सम्बन्धी उन्नति रोकी जाय तो उसके डाढ़ी और मूछ निकल आयेगी! डाढ़ी और मूछ के परीक्षकों ने यह भी लिखा है कि जिन पुरुषों के डाढ़ी और मूछ देर से निकलती है और निकलने पर भी बहुत थोड़े बाल उगते हैं, उनमें पुरुषार्थ की कमी होती है और स्त्री-प्रसंग में वे निर्बल पाये जाते हैं!

बालक और बालिका का शारीरिक और मानसिक विकास क्रमशः होना चाहिए। कभी-कभी बालकों में उनकी बहुत छोटी अवस्था में शारीरिक और मानसिक विकास, उनकी आयु की अपेक्षा, अधिक पाया जाता है। यह बहुत हानिकर होता है। प्रायः देखा

जाता है कि जो बालक अपनी छोटी अवस्था में अत्यधिक स्वस्थ होते हैं और उनको देखकर यह सोचा जाता है कि यह अपने यौवनकाल में पराक्रमी, वीर, शक्तिशाली होगा, वह यौवनावस्था तक पहुँचते-पहुँचते दुर्बल और क्षीणकाय हो जाता है। इसी प्रकार कुछ बालक अपनी छोटी अवस्था में बहुत चतुर, समझदार और प्रतिभा-सम्पन्न देखे जाते हैं और उनकी इन बातों को देखकर सहसा अनुमान होता है कि वे आगे चलकर बहुत बड़े विद्वान् और प्रतिभाशाली व्यक्ति होंगे, पर युवा होने पर वे अत्यंत साधारण समझ के व्यक्ति पाये गये हैं। उनकी अवस्था को देखकर मालूम हुआ है कि उनकी प्रतिभा का आश्चर्यजनक ह्रास होगया। बहुत छोटी अवस्था का यह विकास अनुचित विकास कहलाता है और इस अनुचित विकास के एक-दो नहीं, बहुत उदाहरण संसार में पाये जाते हैं। जिनका शारीरिक और मानसिक विकास, प्रारम्भ में, आवश्यकता से अधिक हो जाता है, उनकी अवस्था, कुछ आगे चलकर, उलटी हो जाती है। यही कारण है कि समाज में जो बालक छोटी आयु में अत्यधिक बुद्धिमान देख पड़ते हैं, वे यौवनावस्था में अपनी प्रतिभा और बुद्धिमत्ता को खो बैठते हैं। इस प्रकार आवश्यकता से अधिक विकास एक प्रकार का रोग है जिसका परिणाम अत्यन्त अहितकर होता है। इसीलिए लोगों की धारणा है कि जो बालक छोटी अवस्था में अत्यधिक स्फूर्ति प्रदर्शित करते हैं, पूर्ण अवस्था में उनको जीवन में प्रायः असफलता मिलती है। इस अवस्था का समर्थन करते हुए हैजलिट ने लिखा है कि जो बालक पढ़ने-लिखने

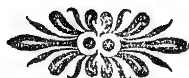
में अत्यन्त प्रतिभावान देख पड़ते हैं, वही अंत में मूर्ख पाये जाते हैं। लार्ड काकबर्न ने इसी प्रकार का अपना अनुभव प्रकट करते हुए लिखा है कि अधिक बुद्धिमान बालकों की अपेक्षा बोदे बालक अधिक उपयोगी निकलते हैं।

इस शीघ्र विकास की अपेक्षा कुछ विलम्ब में विकास का होना अच्छा है। इस प्रकार के कितने ही उदाहरण संसार में पाये जाते हैं। जो वाल्यकाल में बहुत निर्बल शरीर थे, उनकी निर्बलता और शारीरिक ह्रास को देखकर बहुत निराश होना पड़ता था, किन्तु कुछ समय पश्चात् उनके जीवन का जब शारीरिक विकास हुआ तो संसार को आश्चर्य-चकित होना पड़ा। कुछ लोग अपने शिशु-काल में अत्यन्त क्षीण बुद्धिपाये गये हैं, उनको देखकर उनके माता-पिता सदा निराश होते थे; किन्तु जिस समय उनकी मानसिक शक्तियों का विकास हुआ तो उनकी प्रतिभा से एक बार दिशाएँ गूँज उठीं।

सर आइज़ेक वेरो अपनी प्रारम्भिक अवस्था में इतना मूर्ख और बुद्धू था कि उससे सभी लोग घृणा किया करते थे। उसके माँ-बाप उसकी इस अवस्था पर अत्यन्त लज्जित और चिंतित रहा करते थे। गोल्डस्मिथ, स्काट और राबर्टबर्न्स का प्रारम्भिक जीवन अत्यंत निराशापूर्ण था। उनकी मूर्खता और बुद्धि-क्षीणता को देखकर बड़ी चिन्तना होती थी। हुरोशियो नेल्सन अपने बाल्यकाल में अत्यंत निर्बल था। किन्तु सर आइज़ेकवेरो, गोल्डस्मिथ, स्काट और राबर्टबर्न्स ने संसार को अपनी जिस बुद्धिमत्ता का परिचय दिया,

उसने उनके नाम संसार के इतिहास में सदा के लिये अमर कर दिये। हुरेशियो नेल्सन के पराक्रम के गीत अनन्त काल तक गाये जायँगे।

बाल्यकाल में शारीरिक और मानसिक विकास अवस्था के अनुसार ही होना अच्छा होता है। जो माँ-बाप अपनी सन्तान में, उसके बाल्यकाल में, पूर्णायु के विकास को देखने के लिए इच्छुक रहा करते हैं, और वे इसके लिए प्रयत्न भी करते हैं, वे बड़ी भूल करते हैं। इस प्रकार का अनुचित और असामयिक विकास कभी-कभी स्वाभाविक और कभी-कभी माँ-बाप के प्रयत्न से भी हुआ करता है। यह विकास सर्वथा अनर्थकारी होता है और कभी उसका परिणाम मंगलजनक नहीं होता। इसलिए यौवन का विकास जितना अवस्था के अनुसार होता है, उतना ही अच्छा होता है।



नवयुवक और समाज



वकों और युवतियों के शरीर सुन्दर और स्वस्थ क्यों नहीं दिखाई पड़ते? उनके सूखे हुए हाथ-पैर और कुम्हलाए हुए मुख क्यों दिखायी पड़ रहे हैं? बुढ़ापे के पूर्व, स्त्री-पुरुषों के शरीर क्यों ढीले पड़ जाते हैं, उनके शरीर का यौवन नष्ट होकर पीले पड़ जाने का कारण क्या होता है? इन सब बातों का कारण एक ही है और वह कारण है, समाज का व्यभिचार! समाज को काम की शिक्षा नहीं मिली, युवकों और युवतियों को काम की जानकारी नहीं है। उन्होंने केवल व्यभिचार सीखा है—भोग और विलास सीखा है। इसीलिए उनकी अवस्था आज यह है!

युवकों और युवतियों को काम की शिक्षा नहीं दी जाती, स्त्री-पुरुष के सहवास का जो जीवन है, उससे उनको परिचित नहीं किया जाता। उनको इन बातों की वस्तुस्थिति से पृथक रखा जाता है। और पृथक रखा जाता है इसलिए कि वे व्यभिचार न सीखें, युवकों और युवतियों में असंयम न उत्पन्न हो जाय! अब प्रश्न यह है कि क्या वे व्यभिचार से पृथक रहते हैं और क्या उनके जीवन में संयम का भाव होता है? जो माँ-बाप अपनी सन्तान को इस जानकारी से पृथक रखने की इच्छा रखते हैं, वे आँखें खोलकर क्या कभी उनको ओर देखते भी हैं? वे उनको देखते हैं, पर उनके अवगुणों को देखने के लिए उनकी आँखों में ज्योति नहीं है। बालक और बालिकाओं में आचार-विचार देखने के लिए अनुवीक्षणयंत्र की आवश्यकता होती है। उस यंत्र से चाहे भले उनको कुछ दिखायी दे जाय, नहीं तो दिखाई देना असम्भव है। माँ-बाप को अपनी संतान के बुरे आचरण नहीं दिखायी देते। उनको बुरे आचरण दिखायी देते हैं, दूसरे के लड़की-लड़कों के!

नवयुवक व्यभिचार से दूर नहीं रहते, अपने आचरणों में संयम नहीं सीखते। क्यों सीखें? उनको सीखने की क्या आवश्यकता है? जिस व्यभिचार के सम्बन्ध में उनको कुछ ज्ञान नहीं है, जिस दुराचरण के सम्बन्ध में उनको यथोचित जानकारी नहीं मिली, वे उससे परहेज़ क्यों करें? माँ-बाप अपनी संतान को काम की शिक्षा नहीं दे सकते। गुरुजन और परिवार के बड़े-बूढ़े उनको इस मार्ग से इसलिए अपरिचित रखते हैं

कि वे इस मार्ग में समय से पूर्व कहीं पैर न रक्खें ! जहाँ उनको इस पथ की यथोचित शिक्षा और जानकारी होनी चाहिए थी, वहाँ यह भीषण निस्तब्धता है ! एक ओर यह जीवन है और दूसरी ओर वर्तमान संसार का व्यभिचारी समाज है जिसके सहयोग और सम्पर्क में रहकर भोले युवती और युवक कामोत्तेजक बातें सीखते हैं। रात-दिन के चौबीस घंटों में वे इस प्रकार के लोगों के संसर्ग में रहते हैं जो उनको व्यभिचार की शिक्षा देते हैं ! वे स्वयं व्यभिचारी हैं और उनको व्यभिचारी बनाते हैं ! इस अवस्था में परिणाम क्या होगा, यह बताने की आवश्यकता नहीं है।

समाज में थोड़े से कुछ इने-गिने सौभाग्यवान बालकों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जाती है; उनको ब्रह्मचर्य के महत्व एवम् गुण सुनाये और पढ़ाये जाते हैं। इन सौभाग्यवान बालकों में भी कितने बालक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, और अपने यौवन-काल में संयम तथा सदाचार का जीवन बिताते हैं ? जिनका विश्वास हो कि इससे कुछ लाभ होता है, वे लाभ उठावें; पर हमारी समझ में, जहाँ तक अनुभव और ज़ानकारी साथ देती है, इससे बालकों का कुछ भी उपकार नहीं होता। और हो भी नहीं सकता। ब्रह्मचर्य की शिक्षा देकर जिस मार्ग से उन्हें रोका जाता है, वह मार्ग, जब जीवन का एक मार्ग है, तब फिर वे उससे वंचित कैसे रहेंगे। वे वंचित रह सकते हैं यदि उनको यह मालूम हो कि उस मार्ग पर कब चलना होता है—कैसे चलना होता है। उस मार्ग का महत्व क्या है—उस मार्ग की तैयारी क्या-क्या हैं।

समाज के इस बढ़ते हुए व्यभिचार का कारण क्या है ? युवक और युवती, स्त्री और पुरुष, सुखी और संतुष्ट क्यों नहीं हैं ? इसका कारण यह है कि उनको काम की शिक्षा नहीं दीगयी—उनको उसकी यथोचित जानकारी नहीं करायी गयी। किसी एक व्यक्ति के पास रुपये हैं ; उस व्यक्ति को यदि रुपये का सदुपयोग करना नहीं सिखाया गया, तो वह अपने उस रुपये का दुरुपयोग करेगा। काम स्वाभाविक होता है। इस काम का उपयोग, कब, कहाँ, कैसे होना चाहिए, इसकी यथोचित शिक्षा और जानकारी होना अत्यंत आवश्यक है। यदि उसकी उचित शिक्षा और जानकारी नहीं है, तो उसका दुरुपयोग अवश्यम्भावी है। यह दुरुपयोग ही व्यभिचार है। समाज व्यभिचार का ही रोगी है, और इस रोग से ही समाज दुखी और असंतुष्ट है।

इस बढ़ते हुए व्यभिचार को दूर करने का साधन एकमात्र काम की अनभिज्ञता को दूर करना है। मनुष्य में काम की जानकारी अत्यंत आवश्यक है। हमारे यहाँ प्राचीन काल में इस प्रकार की शिक्षा और जानकारी प्राप्त करने के लिए संस्कृत में अनेक बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे गये थे। और जब तक हमारा देश सुशिक्षित, और सभ्य रहा है, उन ग्रंथों का बड़ा आदर करता रहा है। वर्तमान अधोगति में पड़कर देश ने अपनी अन्य जानकारियों के साथ-साथ इस जानकारी को भी खोदिया है। आज संसार में जो देश और राष्ट्र सुशिक्षित और सम्मान्य माने जाते हैं, उन समस्त देशों में सर्वसाधारण की जानकारी के लिए उत्तम-से-उत्तम संख्या-

तीत साहित्यिक ग्रंथ पाये जाते हैं। और वहाँ के बड़े-से-बड़े लेखकों और विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि बालक और बालिकाओं को यौवनावस्था के पूर्व, काम-विषयक पूर्ण रूप से शिक्षा देनी चाहिए और माता-पिता का यह अत्यंत आवश्यक कर्त्तव्य है कि वे अपनी संतान को इस जानकारी से वंचित न रखें।

काम-विषयक बातें करने में समाज लज्जा का अनुभव करता है। समाज की यह सर्वथा भूल है। लज्जा का आवरण तो केवल इसीलिए इसमें कुछ समझा जाता है कि लोग संयम-नियम से रह सकें। पर उस लज्जा का अर्थ तो यह नहीं होता कि उसका उचित और अनुचित ज्ञान भी हम प्राप्त न कर सकें। माँ-बाप तथा गुरुजनों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे अपनी संतान को इसके सम्बन्ध में जो कुछ भी जानकारी पैदा करा सकें, करा दें। इस विषय पर बातें करने में लज्जा का भाव यह अर्थ नहीं रखता कि उसके सम्बन्ध की बात भी न की जाय। काम के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए हमारे यहाँ प्राचीन काल में कामशास्त्र, रति-शास्त्र आदि नामों से अनेक बड़े-से-बड़े ग्रंथ लिखे गये हैं। उनके पढ़ने से मालूम होसकता है कि इस विषय की बहुत बड़ी जानकारी से समाज वंचित हो रहा है। समाज का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं है—पति से पत्नी और पत्नी से पति प्रसन्न एवम् संतुष्ट नहीं है। गार्हस्थ्य जीवन आज सुख-संतोष का जीवन नहीं रहा, वह क्लेश, यंत्रणा, द्वेष और विराग का घर होगया है। इस प्रकार की एक-दो नहीं, गणनातीत बातें हैं जिनका वृद्धावस्था

तक बराबर उपयोग होता है। यदि उन बातों की यथोचित शिक्षा किशोरवय और यौवनावस्था में मिल जाय, तो मनुष्य मरने के समय तक सुखी, संतुष्ट और स्वस्थ रह सकता है। पति-पत्नी का जीवन सुख से व्यतीत हो सकता है। परन्तु उसकी शिक्षा और जानकारी न होने के कारण ये सभी बातें उलटी हो जाती हैं; और सुख-संतोष के स्थान पर जीवन-भर असुख और असंतोष का अनुभव करना पड़ता है।

काम-विषयक अनभिज्ञता से जीवन में एक-दो नहीं, अनेक बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं। सैकड़ों ऐसे रोग पैदा होते हैं, जिनके सम्बन्ध में उनको कभी आशंका भी नहीं होती। वे अपनी अज्ञानावस्था में जो कुछ व्यवहार करते हैं, उनके फलस्वरूप प्रायः उन्हें भयानक विपत्तियों में फँसना पड़ता है। यदि उन्होंने इस विषय का अध्ययन किया होता और उसके सम्बन्ध में सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें जानी होतीं, तो वे इस प्रकार के व्यवहार स्वयं न करते जिससे उनको कष्टों का भोग करना पड़ता। इस प्रकार की बातों का उल्लेख करते हुए डाक्टर ट्राल ने लिखा है—"हमें सहस्रों इस प्रकार के रोगी स्त्री-पुरुषों की चिकित्सा करनी पड़ी है, जो काम-विज्ञान से अनुभव-हीन होने के कारण रोगों में पड़ गये हैं।"

मनुष्य की यह अवस्था कितनी नैराश्यजनक है! वह अपने जीवन में साधारण-से-साधारण बातों के सम्बन्ध में शिक्षा पाता है, उनकी जानकारी प्राप्त करता है। छोटी-छोटी बातों में वह वैद्यों और डाक्टरों से सम्मति लिया करता है; परन्तु इस विषय में वह कभी किसी से न कुछ पूछ सकता है और न उसके सम्बन्ध में कुछ जान सकता है!

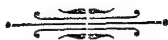
कुछ लोगों का कहना है कि ये बातें किसी से कहने के योग्य नहीं होतीं और जो इन बातों में बहुत गम्भीर एवम् पृथक रहा करता हैं, लोग उसे साधु, सुशील, सच्चरित्र समझा करते हैं। कितनी बड़ी भूल है ! कितना बड़ा पागलपन है ! ये व्यवहार ही एक-दूसरे को इन बातों के अप्रकाश्य रखने की शिक्षा देते हैं। यह केवल अज्ञानता है जिसका अत्यंत भयानक दुष्परिणाम समाज को भोगना पड़ता है !

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति काम की ओर चञ्चल रहा करती है। जब उनको किसी प्रकार उसकी जानकारी प्राप्त होने का द्वार नहीं मिलता तो वे अनुचित मार्गों का अवलम्बन करते हैं। इस अवलम्बन से वे सदा पथभ्रष्ट होते हैं। इसीलिये संसार के काम-विज्ञान-विशारदों ने इसके ज्ञान को प्राप्त करने की आवश्यकता का अनुभव किया है। उनकी धारणा है कि युवकों और युवतियों को सदाचारी बनाने के लिए इसकी शिक्षा की आवश्यकता है। अब प्रश्न यह है कि इसकी शिक्षा कैसे दी जाय। इस सम्बन्ध में अब तक यही निर्णय हुआ है कि नवयुवक और नवयुवतियों की, उनकी अवस्था के अनुसार, काम-विषयक शिक्षा, मां-बाप के द्वारा होनी चाहिए। बालिकाओं की माँ के द्वारा और बालकों की पिता के द्वारा। यदि किसी मां-बाप से यह कहा जाय कि वे अपनी संतान को इसकी शिक्षा दें, तो वे हँसेंगे और कहनेवाले की बातों पर अश्लीलता और एवम् घृणा का आरोप करेंगे। समाज की यह दुरवस्था यहीं तक नहीं है। यह अवस्था और भी आगे बढ़ गयी है। और बढ़ गई है यह

यहाँ तक कि वे अपनी सन्तान को शिक्षा क्या देंगे, उनको स्वयं भी तो किसी बात की जानकारी नहीं है। अपने प्रारम्भिक जीवन में उन्होंने किसी से इसकी एक बात भी नहीं सुनी, इस विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कभी किसी ग्रंथ के दर्शन नहीं किये। जानकारी और ज्ञान होगा कहाँ से? साधारण समाज कामशास्त्र के नाम से किसी ग्रंथ का नाम सुना करता है, और कुछ लोग कोकशास्त्र को ज्योतिष-सम्बन्धी ज्ञान समझा करते हैं! उनको इतनी भी तो जानकारी नहीं होती कि ये ग्रंथ हमारी उस अवस्था के गुण और अवगुण के परिचायक हैं जिससे अपरिचित होने के कारण हम न केवल रोग-शोक पूर्ण एवम् दुखी-दरिद्र हैं, प्रत्युत समाज और राष्ट्र को पतित बना रहे हैं।

कोकशास्त्र और कामशास्त्र के नाम से जो कुछ पुस्तकें पायी जाती हैं, समाज में वे अश्लील समझी गयी हैं। इसके सम्बन्ध में दो बातों का उल्लेख करना भी यहाँ आवश्यक है। ये पुस्तकें जिस रूप में पाई जाती हैं, अधिक उपयोगी नहीं हैं। वे केवल अधिक रूप में पढ़नेवालों के हृदयों में काम-वासना के भाव उत्पन्न करती हैं और संयम तथा सदाचार का नाश करती हैं। ये पुस्तकें संस्कृत के जिन प्राचीन ग्रंथों के आधार पर लिखी जाती अथवा मानी जाती हैं, उनका सर्वथा लोप होगया है। थोड़ी-सी अधूरी बातें जो मिल जाती हैं, उनको लेकर काम-विज्ञान से अपरिचित लेखक कामोत्तेजक बातों से पृष्ठ रँगा करते हैं। वास्तव में काम की उचित और जानने योग्य उनमें शिक्षा नहीं होती। इसका फल यह हुआ है कि समाज इस

प्रकार के सभी ग्रंथों के प्रति उदासीन होगया है। दुर्भाग्य से हमारे साहित्य में इस प्रकार के सत्साहित्य का पूर्ण रूप से अभाव है; और यदि इस अभाव को दूर करने के लिए पुस्तकें मिलती भी हैं, तो समाज की उदासीनता उनको हमसे वंचित रखती है। यह निश्चित है कि जिस प्रकार इसकी शिक्षा न मिलने से लोग काम का अनुचित प्रयोग करते हैं, जो व्यभिचार और दुराचरण कहलाता है; उसी प्रकार यदि इसकी जानकारी असाधु प्रकृति मनुष्यों और असत् साहित्य की पुस्तकों से हुई, तो उसका परिणाम अच्छा नहीं होता। इसीलिए इसका ज्ञान प्राप्त करने तथा बालक और बालिकाओं को इसकी शिक्षा देने का काम बहुत सावधानी का काम है। समाज से व्यभिचार दूर करने के लिए और युवकों तथा युवतियों को आजीवन सुखी तथा संतुष्ट बनाने के लिए सब से अधिक आवश्यक यह है कि उनको शिक्षित माँ-बाप एवम् गुरुजनों के द्वारा काम-विषयक शिक्षा दीजाय अथवा इस विषय के सद्ग्रंथों के द्वारा उनमें जानकारी पैदा की जाय। जो मां-बाप अपनी संतान के इस जीवन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लेते, वे संतान उत्पन्न करके केवल समाज के अधःपतन के कारण बनते हैं।





अनभिज्ञता का दुष्परिणाम



ननेन्द्रिय-सम्बन्धी बातों को समाज के जो लोग अश्लीलता का रूप देते हैं, जिनके विचारों में इसके सम्बन्ध में प्रकाश डालना अनुचित है, पाप है, वे नहीं समझ सकते कि इस विषय की हमारी अनभिज्ञता हमारे जीवन की कितनी अधिक त्रुटियों का कारण है !

विद्यार्थी, युवती और युवक लज्जा के सजीव चित्र होते हैं।

वे इस विषय के जीवन में, समाज के नेत्रों से, बहुत सावधान रहते हैं। वे अपनी अनभिज्ञता और अनजान अवस्था को अपने शुद्ध एवम् पवित्र आचरण का प्रमाण समझते हैं। यदि उनकी अवस्था वास्तव में इसी प्रकार होती, यदि वास्तव में उनके विचार और आचरण काम-सम्बन्धी बातों से दूर होते तो कुछ भी असंतोष का कारण न होता। उस अवस्था में यह स्वीकार कर लिया जाता कि वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने के साथ-साथ उनको इस जीवन से जानकार हो जाना चाहिए। किन्तु विद्यार्थियों और युवकों की अवस्था इससे विपरीत है। उनके परोक्ष जीवन के दृश्य देखकर यह अनिवार्य आवश्यक हो गया है कि उनको इस विषय से भली भाँति जानकार बनाया जाय। जो जीवन के अनेक दुष्परिणामों से बचना चाहते हैं, जो अपने जीवन को स्वस्थ, सुन्दर, आरोग्य और पराक्रमी बनाना चाहते हैं, उनके लिए यह अनिवार्य आवश्यक है कि वे उसके सम्बन्ध में पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त करें जिसकी अनजानकारी से वे उसका दुरुपयोग करते हैं और उसके पश्चात् भीषण विपत्तियों में फँसा करते हैं। ये दुरुपयोग मनुष्य-जीवन में यौवन के प्रारम्भ से ही उत्पन्न हो जाते हैं और छोटे-छोटे बालकों, विद्यार्थियों और युवकों को दुश्चरित्र बनाते हैं। वे आचरण-भ्रष्ट होते हैं और उसके फल-स्वरूप अपने जीवन को आजीवन के लिए रोग-शोक पूर्ण बना लेते हैं। जिन बातों की ओर उनका आकर्षण होता है, वे क्या हैं और किस लिये होती हैं, यदि उनको इस बात का ज्ञान हो तो वे कभी भूल न कर सकें।

समाज ने इन बातों के कुफलों से रक्षा करने के लिए बालकों और युवकों के निकट इस विषय को गोपनीय स्वीकार किया है। बाल-समाज से यह विषय प्रायः गुप्त रखा भी जाता है। फिर उनके भ्रष्ट होने का कारण क्या है, इस प्रश्न को तात्विक दृष्टि से सोचने की आवश्यकता है। जिन बातों की ओर बालकों को अग्रसर किया जाता है, जो बातें कभी भी अप्रकट और गुप्त भी नहीं रखी जातीं, उन बातों की ओर बालक उदासीन रहा करते हैं। माता-पिता बालकों के दुराचार के सम्बन्ध में सतर्क और सावधान रहा करते हैं, फिर भी बालकों में दुराचरण उत्पन्न हो जाते हैं; और उत्पन्न हो जाते हैं शत प्रति शत ! सदाचारी बनाने के लिये प्रयत्न किया जाता है, सदाचार की अनेक बातें उनको बतायी जाती हैं, पढ़ायी जाती हैं और सुनायी जाती हैं। परंतु पाँच प्रतिशत बालक भी सदाचारी नहीं बन पाते। ज़रा इसके कारणों पर भी विचार कीजिये।

बात यह है कि मानवप्रकृति अदृश्य बातों के जानने के लिए उत्सुक रहा करती है। किसी बालक को एक घर में छोड़ दिया जाय। छोड़ने के कितने ही दिन पहले उसे बताया जाय कि घर में रखी हुई तीन सन्दूकों में एक भोजन की सामग्री रखने की है, दूसरी वस्त्र और आभूषण रखने की है। तीसरी सन्दूक में क्या है, यह उसे कभी न बताया जाय, तीसरी सन्दूक उसके द्वारा कभी खोली न गयी हो। उसके खोलने से बड़ी हानि हो सकती है, यह बात वह सुनता और जानता रहे। जिस समय वह घर में

अकेला छोड़ा जाय, उस समय भी उससे कह दिया जाय कि वह तीसरी सन्दूक न खोले। इन बातों के साथ घर में बालक को अकेला छोड़ दिया जाय। अकेले होने पर जब बालक की प्रकृति चंचल होगी, वह घर की सब वस्तुओं को छोड़कर उसी सन्दूक को खोलेगा, जिसके न खोलने के लिए वह सदा सावधान किया गया है। किसी आदमी के द्वारा तीन पत्र तीन बिभिन्न व्यक्तियों के नाम भेजे जाँय, जिस समय वह लेकर जाने लगे, उस समय उससे कह दिया जाय कि इन पत्रों में अमुक पत्र किसी दूसरे के देखने और पढ़ने के योग्य नहीं है, इसलिए इसको बिना खोले और बिना पढ़े हुए तुम उस व्यक्ति के पास पहुँचा देना, जिसके नाम वह पत्र लिखा गया है। शेष दो पत्रों के पढ़े जाने से कोई हानि नहीं है। वह आदमी उन पत्रों को ले जायगा और जिस पत्र को पढ़ने से रोका गया है, उसे वह खोलकर अवश्य पढ़ेगा। यह प्राकृतिक आकर्षण है, स्वाभाविक बात है। यदि उस बालक से, वह सन्दूक अदृश्य और गुप्त न रखी जाती और उसके खोलने से वह मना न किया जाता, तो वह केवल उस सन्दूक को ही खोलने और उसके भीतर क्या है, यह जानने की चेष्टा न करता। इसी प्रकार उस मनुष्य से, जिसके द्वारा तीन पत्र भेजे जाते हैं, यदि एक पत्र को गुप्त और अप्रकट रखने की बात न कही जाय, तो उसके जी में किसी पत्र को पढ़ने की उत्सुकता न पैदा होगी; और यदि होगी तो तीनों के प्रति समान रूप से। किंतु एक पत्र जब उससे गुप्त रखा जाता है, तो स्वभावतः उसमें, उस पत्र के खोलने और पढ़ने की उत्सुकता और

अधीरता उत्पन्न होगी । दो व्यक्ति परस्पर बातें करते हैं। यदि वे इतने धीरे और अप्रकट रूप से बातें करते हैं जिससे कोई उन बातों को सुन न ले तो जो कोई देखेगा, उनकी बातें सुनने और जानने की चेष्टा करेगा । यदि उन व्यक्तियों ने अपनी बातों में गुप्त भाव रखने का उद्योग न किया होता और वे अपनी बातें ऊँचे स्वर में, प्रकट रूप में करते, तो कोई भी उनके सुनने और जानने के लिए छिपकर चेष्टा न करता ! प्रकृति का यह गुण है कि जो बातें अव्यक्त और छिपाकर रखी जाती हैं, मनुष्य उन्हीं की ओर दौड़ता है ।

बालक अपने जीवन में जब से सचेत होता है, और संसार की बातें जानने की समझ का अनुभव करता है, उसी समय से वह काम-सम्बन्धी बातों को अव्यक्त और अप्रकट पाता है । वह माँ और बाप को छिपकर मिलते-जुलते देखता है । जब वह किसी स्त्री और पुरुष के व्यवहार देखता है तो उसमें विषय-वासना के स्वप्नों का दर्शन करता है । किन्तु विषय और वासना क्या है, इसको वह अपने जीवन से अदृश्य और अव्यक्त समझता है ! वह अपनी और दूसरों की गुप्त इन्द्रियों को समझता और अनुभव करता है, परन्तु वे क्या हैं, यह जानने में वह लज्जा का अनुभव करता है । इन इन्द्रियों का उपयोग क्या होता है, यह वह जानता है ; परन्तु जानने की बात को अपने से गुप्त समझता है ! वह स्त्री और पुरुष के, पति और पत्नी के गुप्त सहवास को संसार के नेत्रों से छिपकर देखता और समझता है ; परन्तु समझने की बात को वह अपने से अव्यक्त और गोपनीय

समझता है। व्यभिचार क्या है, वह यह नहीं समझता, किन्तु व्यभिचार की क्रिया को वह समझता और जानता है! अपनी अवस्था से बड़ी आयुवालों की प्रवृत्ति और उनके व्यवहारों में विषयोपभोग के सजीव चित्र देखता है; पर विषयोपभोग क्या है, यह अपने जानने योग्य वह नहीं समझता! यह समस्त अदृश्यता, अप्रकटता और अव्यक्तता उसकी प्रवृत्ति को काम और व्यभिचार की ओर प्रवाहित करती है। काम-सम्बन्धी बातों में कोई रहस्य नहीं है, रहस्य है उसमें अदृश्यभाव में। यदि उसको अदृश्यता का रूप न दिया गया होता और समाज में उसकी जानकारी और अभिज्ञता को अनुचित एवम् पाप न माना गया होता, तो उसकी ओर प्रवृत्ति के अनावश्यक कुभाव का होना असम्भव था।

जीवन की अनेक बातें और उसके कितने ही अंश पाप और अपराध कहकर छोड़ दिये जाते हैं। उन पापों और अपराधों का समाज में, सर्वसाधारण को, कुछ अनुभव नहीं होता। फल यह होता है कि समाज में अपराधी मार्ग ही अधिक व्यवहार में आते हैं। हाँ, होता यह है कि वे बातें अधिक से अधिक रूप में व्यवहृत भी होती हैं और पाप और अपराध के नाम से पुकारी भी जाती हैं। प्रत्येक अपने आपको दूसरों की आँखों में सुरक्षित रखता है। वह जिन बातों को पाप के नाम से सुनता आता है, समाज के देख-रेख में वह उन पर बड़ी घृणा प्रदर्शित करता है। घृणा प्रदर्शित इसलिए करता है कि समाज ने उस ओर चलने का अवरोध कर रखा है। उसके प्रदर्शन में व्यावहारिकता नहीं होती, इसका कारण क्या

है ? असत्य बोलना अपराध है। इससे अधिक अपराध कोई नहीं है। जितने भी जीवन में पाप होते हैं सब में असत्य का ही आधार होता है। असत्य के इस अपराध और पाप को प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के आदि काल से सुनता रहता है और आजीवन सुनता है। वह जितने धार्मिक ग्रंथ पढ़ता है, सब में असत्य की उपेक्षा के चित्र पाता है। सर्वत्र वह सत्य की प्रशंसा सुनता है, कहीं भी मनुष्य असत्य का प्रोत्साहन नहीं पाता। अब देखने की बात यह है कि समाज में सत्य और असत्य का कितना अंश होता है। समाज ने जब असत्य को बड़ा से बड़ा पाप स्वीकार किया है और असत्य बोलने के प्रति उसने अत्यंत घृणा प्रदर्शित की है, तब भी सत्य बोलनेवालों का मिलना समाज में एक प्रतिशत भी कठिन होरहा है ! यह अवस्था क्यों है—समाज के अवरोध का यह दुष्परिणाम क्यों हैं ? इसका कारण केवल यह है कि सर्वसाधारण को असत्य का वैज्ञानिक ज्ञान नहीं है। मनुष्य असत्य की वास्तविकता को समझने की शक्ति नहीं रखता। असत्य क्यों अपराध और पाप है, इस बात को वह हृदय से अनुभव नहीं करता। वह केवल इतना जानता है कि असत्य समाज के निकट अप्रशंसात्मक होता है, इसीलिए वह अपनी एक-एक बात में सत्य की घोषणा करता है। जो आदमी अपनी सत्यता का ढोल पीटता है, वह असत्यवादी ही होता है। वह असत्य बोलता है और उसकी घोषणा करता है। वह असत्य बोलना नहीं छोड़ता। कारण यह है कि उसको असत्य से वास्तव में घृणा नहीं है, उसमें असत्य की वास्तविकता का ज्ञान

नहीं है। समाज में सत्य का अंश उतना पाया ही जाता है जिससे उसके अस्तित्व में भी सन्देह हो। प्रायः देखा जाता है कि जिस बात में रुकावट होती है, जो मार्ग अवरुद्ध रखा जाता है, यदि उस रोक और अवरोध के स्थान पर, उसकी वस्तुस्थिति का उनको ज्ञान नहीं होता तो उस ओर स्वभावतः लोगों में आसक्ति, उत्सुकता और अभिरुचि पाई जाती है।

बालकों और युवकों को शिक्षा मिलती है कि वे अमुक स्थान पर न जायँ ; उस स्थान पर जाना उनके लिए अहितकर और अधर्म है। इस शिक्षा को बालक और युवक जानते हैं, सुनते हैं ; फिर भी वे वहाँ पर जाते हैं—जाते हैं शिक्षकों की आँखें बचाकर। उस स्थान पर यदि वे अपने शिक्षक बड़े भाई, पिता आदि को देखते हैं तो वे छिप जाने का प्रयत्न करते हैं। इसका कारण क्या है ? वास्तव में बात यह है कि वे इतना जानते हैं कि हमको वहाँ पर न जाना चाहिए ; पर क्यों न जाना चाहिए, यह वे नहीं जानते। इसके लिए यहाँ पर दो मार्ग हैं। एक तो यह कि उनको इस क्यों का अर्थ भली भाँति समझाया जाय और यहाँ तक समझाया जाय कि उनको उस स्थान से स्वयं घृणा होजाय और यदि यह न होसके तो वे रोके भी न जायँ, रुकावट और अवरुद्धता उनको उस स्थान पर जाने के लिए अधीर करती है।

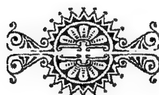
बालकों और युवकों को प्रायः ये बातें सुनने को मिला करती हैं कि बस्ती से बाहर, अमुक स्थान पर, पीपल के पेड़ में, ब्रह्मराक्षस रहा करता है। उसने उन लोगों को, जो वहाँ से होकर निकले हैं,

उठाकर पटक दिया है और बीमार कर दिया है। वे बालक उस ब्रह्म-राक्षस के सम्बन्ध की अनेक कथाएँ सुना करते हैं। जब वे अपनी मंडली में बैठते हैं उस समय न जाने कितनी घटनाएँ वे उसके सम्बन्ध में सुनते हैं। ये घटनाएँ उनके हृदयों में बैठ जाती हैं। वे निकलते-पैठते सदा-सर्वदा उन बातों का स्मरण रखते हैं। कितनी ही बड़ी आवश्यकता पड़ जाय, वे रात को वहाँ से होकर न निकलेंगे ; वे जानते हैं कि ब्रह्मराक्षस सुनसान समय में ही आया करता है। वे बालक और युवक धीरे-धीरे वृद्ध हो जाते हैं पर उस पीपल के वृक्ष का डर उनसे दूर नहीं होता। यदि उनको उस ब्रह्मराक्षस की कथाएँ, उसके दुष्परिणाम, न सुन पड़ें और अपने मां-बाप तथा घर के बड़े-बूढ़ों से वहाँ पर न जाने की बात सुनी जाय और क्यों न जायँ और जाने से क्या होगा, उनको यह जानने को न मिले, तो वे उस स्थान पर स्वभावतः जायँगे और अवश्य जायँगे।

समाज की सभ्यता और शिष्टता ने इसी प्रकार का अपराध कर रखा है। स्त्री और पुरुष के जिन अंगों को वस्त्रावृत रखने की प्रथा है, स्त्री और पुरुषों में उन्हीं अंगों के प्रति आकर्षण पाया जाता है। क्या उन अंगों में इस आकर्षण की कोई विशेषता है? यदि उन अंगों की विशेषता को कोई स्वीकार करता है, तो वह बड़ी भूल करता है। उन अंगों के प्रति कुछ भी आकर्षण मनुष्य की मनोवृत्ति में न होता यदि उनको अप्रकट रखकर, स्त्री-पुरुषों के नेत्रों से छिपाने की प्रथा न होती। अशिक्षित और शिष्ट समाज से पृथक रहनेवाली जातियों की स्त्रियाँ अपने कुछ अंगों में प्रायः

अनावृत देखी जाती हैं। उनके अनावृत अंगों के दर्शन सभ्य समाज के पुरुषों में काम-वासना जागरित करते हैं। इस प्रकार की जातियों की स्त्रियों और नवयुवतियों के अनावृत वक्ष देखकर शिष्टता के पालक-पोषक पुरुषों की मनोवृत्तियाँ काम-वासना से चञ्चल होउठती हैं, उनको अपनी वृत्तियों पर शान्ति से शासन करना कठिन हो जाता है। परन्तु वे अशिष्ट स्त्रियाँ और युवतियाँ अपनी जातियों में सदा इसी रूप में रहा करती हैं। न उस जाति के पुरुषों में इसका कुछ प्रभाव पड़ता है और न स्त्रियाँ ही अपनी किसी पतित मनो-वृत्ति के कारण इस रूप में रहा करती हैं।

इन बातों को लेकर जितनी ही मीमांसा की जायगी, उतना ही अधिक यह प्रमाणित होगा कि जिन बातों को जितना ही अव्यक्त, अप्रकट और छिपाकर रक्खा जाता है, उतना ही उनके प्रति आकर्षण औत्सुक्य और चाञ्चल्य भाव उत्पन्न होता है। काम-सम्बन्धी जीवन को शिष्टता और सभ्यता के आवरण में न ढककर जितना ही उसके रूप, गुण, स्वभाव को समाज के सम्मुख रखा जायगा, उतना ही समाज से पाप और व्यभिचार का ह्रास होता जायगा।



कुत्सित आचरणों का प्रतिकार



आचरणों के बनने और बिगड़ने का समय होता है, बाल्यकाल और यौवनावस्था। ये दोनों अवस्थाएँ माँ-बाप के शासन में व्यतीत होती हैं। इसलिए बालकों और युवकों के कुत्सित आचरणों में कितना बड़ा उत्तरदायित्व उनके माँ-बाप का होता है, इस परिच्छेद में इसीकी विवेचना करनी है।

बाल्यकाल से लेकर यौवन के पूर्ण विकास तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। प्रत्येक देश के समाज में बालक और बालिका को, युवक और युवतियों को, ब्रह्मचारी रहने के लिए शिक्षा दी जाती है। उनको इस प्रकार की पुस्तकें पढ़ायी जाती हैं,

जिनसे उनके जीवन के संयम-नियम को सहायता मिले। किन्तु समाज का यह उद्देश्य सफल नहीं होता। युवक और युयतियों का जीवन जितना पवित्र रहना चाहिए, नहीं रहता। इसका कारण क्या है, इस प्रश्न को लेकर अनेक प्रकार की मीमांसाएँ की जारही हैं। किसी भी समाज और राष्ट्र का भविष्य उसकी नवीन संतति के ऊपर निर्भर होता है। समाज और राष्ट्र का उत्थान और पतन उसके बालकों और युवकों के हाथ में होता है। जिस समाज में बालकों और युवकों के जीवन का बराबर ह्रास होरहा हो और उनके जीवन रोग, शोक एवम् परिताप के घर होरहे हों, उस समाज का भविष्य कितना चिन्तनापूर्ण होता है, इसके बताने की आवश्यकता नहीं है। समाज का उज्वल भविष्य निर्भर है उसकी स्वस्थ, शक्तिशाली और पराक्रमी संतान पर और संतान के इन गुणों का उत्तरदायित्व है उनके माँ-बाप के ऊपर। यदि इस उत्तरदायित्व को कोई स्त्री-पुरुष अपने ऊपर नहीं लेता और वह अपनी संतानोत्पत्ति के द्वारा समाज के भार की वृद्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता तो उसको संतान-उत्पति करने का कोई अधिकार नहीं है!

विवाह हो जाने के पश्चात् प्रत्येक स्त्री-पुरुष संतान की लालसा रखता है और यदि कुछ समय तक संतान न हो तो उनकी यह लालसा और उत्सुकता उन्माद का रूप धारण करती है। जो संतान के लिए लालायित रहते हैं, क्या कभी वे यह भी सोचते हैं कि संतान के लिए क्या करना होता है। माँ-बाप संतान का छोटी अवस्था में पालन-पोषण करना जानते हैं। कुछ बड़े होने पर उसको

शिक्षित बनाने की प्रयत्न करते हैं और साथही उसका विवाह करके वे उससे सदा के लिए उऋण हो जाते हैं। जीवन की ये सारी बातें एक ओर होती हैं और उसको सुख-संतोष पूर्ण बनाने का साधन एक ओर होता है। पर प्रश्न यह है कि जीवन की वह कौनसी बात है जिसके द्वारा संतान आजीवन सुखी रह सकती है, वह कौनसा साधन है जिसके पुण्य-प्रताप से वह अपना मनुष्य जीवन सफल बनाता है। वह एक ही बात है और वह बात है, मनुष्य-जीवन का सदाचार ! सदाचार ही बालक को सुन्दर, शक्तिशाली और पराक्रमी बनाता है और सदाचार ही उसको जीवन के प्रकृत सुखों की ओर ले जाता है। पतित आचरण उसे सदा-सर्वदा के लिए निर्बल, असहाय और पुरुषत्वहीन बनाते हैं। यह निर्बलता और पुरुषत्वहीनता उसको जीवन के सुखों से सदा के लिए पृथक कर देती है। न शिक्षा काम देती है और न सम्पत्ति काम आती है। यह निर्बलता और असमर्थता बाल्य-काल और यौवनावस्था के कुत्सित आचरणों का दुष्परिणाम है। कुत्सित आचरण बालकों और युवकों में कैसे उत्पन्न हो जाते हैं और उनके कौन-कौन से आचरण कुत्सित आचरण कहलाते हैं, इसके सम्बन्ध में अन्य परिच्छेदों में बताया जा चुका है। यहाँ पर बताना यह है कि इन कुत्सित आचरणों का प्रतिकार कैसे हो सकता है।

जो लोग पाश्चात्य संसार से घृणा करते हैं, उनको अपनी और उसकी ओर नेत्र खोलकर देखना चाहिए। देखना चाहिए कि

उस जगत का मानव-समाज सुखी है, संतुष्ट है और मानवजीवन की सुख-समृद्धि में वह अधिक से अधिक सम्मुन्नत है। वहाँ के प्रतिभाशाली लेखकों ने यह स्वीकार किया है कि बालकों और युवकों को सदाचारी बनाने के लिए सावधानी और उत्तरदायित्व के साथ प्रयत्न करने की आवश्यकता है। बालक और युवक अपनी अनभिज्ञता के कारण दुराचरणों में पड़ते हैं और अंत में पछताते हैं। जिस समय वे कुत्सित आचरण सीखते हैं, उनको उन आचरणों के भयानक परिणामों का ज्ञान नहीं होता। इसलिए बालकों और युवकों को, उनकी अवस्था के अनुसार, माँ-बाप के द्वारा काम-विज्ञान की शिक्षा मिलना चाहिए। वास्तविक ज्ञान न होने के कारण जिन अंगों का वे असमय दुरुपयोग करते हैं, ज्ञान और जानकारी होने पर वे कभी न करेंगे।

बालकों में जो दुराचार उत्पन्न हो जाते हैं, उनका व्यवहार करते हुए भी वे अपने माँ-बाप और गुरुजनों के निकट सदाचारी बनने का प्रयत्न करते हैं! माँ-बाप और गुरुजनों को बालकों के प्रति सदा सतर्क रहना चाहिए। उनको चाहिए कि वे अपने बालकों की जीवन-चर्य्या का सदा अध्ययन किया करें और बालकों के चरित्र को वे कभी पतित न होने दें। जब एक बार कोई बालक पतित हो जाता है, तो वह फिर कठिनाई के साथ सँभलता है। बालकों के चरित्र-सुधार में माँ-बाप को अधिक सफलता मिल सकती है। परन्तु सफलता पाने के लिए उनको बालकों के जीवन में अपने जीवन को सम्मलित कर देना पड़ेगा। जो बालकों के चञ्चल जीवन से घृणा करते

हैं अथवा उनके कुछ ऐब देखकर उन पर क्रोध करते हैं, वे उन का सुधार करने में अधिक सफल नहीं हो सकते।

माँ-बाप के जीवन और बालकों के जीवन में अंतर हुआ करता है। माँ-बाप का जीवन अवस्था के अनुकूल गम्भीर हो जाता है, किन्तु बालकों का जीवन चञ्चल, अस्थिर और अशान्त होता है। जिन्हें बालकों के जीवन से प्रेम होता है, वे उनको सच्चरित्र बना सकने में अधिक सफल होते हैं। पिता और पुत्र के बीच में लज्जा और संकोच का व्यवहार न होना चाहिए। पिता को चाहिए कि वे अपने बालकों को इतना निडर और निरंकुश रखें कि वे प्रत्येक बात उनसे कह सकें। वे अपना सुख-दुख कह सकें, अपनी आवश्यकता बता सकें और जब वे किसी वस्तु की इच्छा करें तो उसके लिए अपने पिता-माता से कह सकें। जो बालक डर के मारे अपने माँ-बाप से कभी कुछ कह नहीं सकते, जिस वस्तु की उनको इच्छा होती है, उसको वे माँग नहीं सकते, वे ही दुश्चरित्र हो जाते हैं। जो नर-राक्षस आचरण-हीन होते हैं, वे उन्हीं अभागे बालकों को बहकाकर और प्रलोभनों में फँसाकर चरित्र-भ्रष्ट करते हैं, जो अपने माँ-बाप से डर के मारे अपनी आवश्यकताएँ पूरी नहीं करा सकते। इन बालकों के बिगड़ने और भ्रष्ट होने का कारण उनके माँ-बाप का अनुचित व्यवहार है।

समाज के पुराने शिष्टाचार के अनुसार कुछ लोग अपने लड़के-लड़कियों से बहुत दूर का सम्बन्ध रखते हैं। वे उनसे कभी बातें नहीं करते, उनके साथ कभी सहानुभूति नहीं दिखा सकते। अभिप्राय

यह कि घर के बड़े बूढ़े अपने घर के युवक स्त्री-पुरुष के इन व्यवहारों को देखकर अशिष्टता का अनुभव न करें। समाज की यह शिष्टता और सभ्यता देहात के निवासियों में अधिक पायी जाती है और बहुत पुराने समय से चली आ रही है। इसके फल-स्वरूप देखा यह जाता है कि बेटा, बाप से और बाप, बेटे से कभी बातें नहीं करता। सामने होने पर जहाँ, जिस बैठक में, पिता बैठा होता है, वहाँ, उसके सामने, जाकर पुत्र नहीं बैठता; और जहाँ पुत्र होता है यदि वहाँ उस ओर वह अपने पिता को आता हुआ देख ले, तो वह वहाँ से भाग जायगा। यह सब यहाँ का शिष्ठाचार है—यहाँ की सभ्यता है! जिस समाज में इन शिष्टाचारों ने अपना स्थान बना रखा हो, और जहाँ पर इन अशिष्टताओं को शिष्टता का नाम और स्थान मिला हो, उस समाज के जीवन और अस्तित्व की ईश्वर ही रक्षा करे। इन शिष्टाचारों का परिणाम यहाँ तक भयंकर देखा गया है कि पिता-पुत्रों में आजीवन बातचीत नहीं होती। जब कभी कोई बड़ी आवश्यकता पड़ गयी तो अत्यंत संकोच और लज्जा के साथ, टूटे-फूटे शब्दों में, एक-दो बात कर ली और फिर ज्यों के त्यों हो, गये। जिस सभ्यता ने पिता-पुत्र को इस परिणाम तक पहुँचाया यदि उसने इतना और किया होता कि इस प्रकार के पिता सन्तान उत्पन्न ही न कर सकते तो अधिक अच्छा होता!

समाज अब उस युग में नहीं है जिसमें पाप और लज्जा के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। इस युग में समाज का कोई भी जीवन अप्रकाश्य नहीं रह सकता और न उसके किसी आवश्यक

एवम् अनावश्यक अंग पर परदा डाला जा सकता है। पिता-पुत्र का सम्बन्ध लज्जा और संकोच का सम्बन्ध नहीं है। संतान अपने पिता का नवीन संस्कृत रूप है। इसलिए उसको अत्यंत सावधानी के साथ सुपथ पर परिचालित करने की आवश्यकता है। नवीन युग भी सभ्यता और शिष्टता ने माता और पिता के कर्त्तव्यों को विस्तृत बना दिया है। यह शिष्टता और सभ्यता नवीन युग की धार्मिकता है, जिसके आधार पर माता और पिता को यह जानने की आवश्यकता है कि वास्तव में पाप क्या है, और पुण्य क्या है—धर्म क्या है। प्रश्न यह है कि जीवन में पाप और अधर्म का प्रतिकार कैसे हो सकता है और जीवन को पुण्य एवम् धर्म का रूप कैसे दिया जा सकता है। इस कर्त्तव्य-निष्टा के साथ माता और पिता का उत्तरदायित्व अत्यन्त गम्भीर और विस्तृत होजाता है। जीवन का जो बहुत बड़ा पाप पुकारा जाता है वह है व्यभिचार—काम का अनुचित प्रयोग। यह अनुचित प्रयोग क्या है और उसका किस प्रकार दमन किया जासकता है। यह विचारणीय है। यह अनुचित प्रयोग ही बालकों और युवकों को चरित्र भ्रष्ट करते हैं। ये अनुचित प्रयोग न हों, यदि उनको उनकी वास्तविकता का ज्ञान होजाय। पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म, कुछ इस प्रकार के शब्द हैं जिनको समाज को सभी लोग सुनते और समझते हैं; पर इन शब्दों के अंतरतर में इतनी बड़ी गम्भीरता होती है कि जिसपर प्रकाश डालने के लिए संसार के बड़े-से बड़े तत्ववेत्ता विस्मित होते हैं। इस पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म को लेकर ही जीवन का प्रारम्भ होता है

और उसी की अभिज्ञता एवम् अनभिज्ञता पर बालकों का जीवन निर्भर होता है। उनके जीवन से इस अनभिज्ञता का दूर करना माँ-बाप का काम है और इसके दूर करने में वे उसी अवस्था में समर्थ हो सकते हैं, जब उनको स्वयं इन बातों का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म ज्ञान हो।

साधारण जानकारी से कोई लाभ नहीं होता। यहाँ पर एक छोटीसी घटना का स्मरण हो रहा है एक पुरुष अपनी पत्नी के साथ रहा करते थे। वे नौकरी करते थे और जहाँ वे नौकरी करते थे, वहाँ से वे रात के ग्यारह बजे और कभी-कभी उसके पश्चात् आया करते थे। उन्होंने अपनी पत्नी को समझा रखा था कि वह अपने घर का द्वार सायंकाल से बन्द कर लिया करे। पत्नी ने इस आज्ञा का पालन किया। नित्य वह सन्ध्या होते-होते अपने घर का द्वार बन्द कर लिया करती थी। जिस समय नौकरी पर से उसका पति आता, वह बाहर से किवाड़े की कुंडी खटखटाता, उस समय पत्नी आ कर किवाड़ खोल देती थी। एक दिन रात के दश-ग्यारह बजने का समय था। स्त्री चारपाई पर लेटी हुई नींद के आवेश में आलस-अनुभव कर रही थी। उसी समय कुंडी के खटकने की आवाज़ आई। पत्नी ने सजग होकर किवाड़े खोल दिये। रात का समय था, अंधेरा भी था। किवाड़े खोलने पर उसने इधर-उधर देखा, उसके पति कहीं दिखाई न पड़े। उसने समझा, मुझे धोखा होगया। वह लौटकर चारपाई पर लेट गई। कुछ देर पश्चात् उसके पति आये। उनके कुंडी खटखटाने पर, स्त्री ने जाकर किवाड़े खोले और लौटकर

जब पति-पत्नी लेटे तो उसने अपने धोखा खाने की बात पति से कही। पति ने कहा—जब किसी को, किसी बात की, चिन्ता लगी रहती है, तो इस प्रकार धोखा हो जाता है। फिर दोनों रात को सोगये। प्रातः जब दोनों जगे, तो देखा, घर का सब सामान चोरी चला गया, किवाड़े खुले पड़े थे! यह घटना क्यों हुई, इसको समझ लेना यहाँ पर आवश्यक है। पत्नी को इस प्रकार की दुर्घटनाओं का कुछ अनुभव नहीं था। उसके पति ने द्वार बन्द रखने के साथ-साथ इस प्रकार की दुर्घटनाएँ कभी बताई न थीं। किस-किस प्रकार की दुर्घटनाएँ हो सकती हैं—कैसे-कैसे लोग संसार में छले जाते हैं, इन बातों को लेकर पति ने कभी पत्नी को इतना दूरदर्शी नहीं बनाया, जिससे वह द्वार खोलने के पूर्व अपने पति का आना और न आना भली प्रकार समझ लेती।

बालक और बालिकाएँ, युवती और युवक, जीवन की दुर्घटनाओं से पूर्णतया अनुभव-हीन होते हैं। उनकी यह अनुभव-हीनता और अनभिज्ञता पूर्ण रूप से दूर करने की आवश्यकता होती है और उसका दूर होना उसी अवस्था में सम्भव है जब उनको भली प्रकार यह समझाया जाय कि दुराचरण क्या होता है, किस-किस प्रकार उसका जीवन में प्रवेश होता है और उसके परिणाम कितने भयानक होते हैं। इन बातों को लेकर माता और पिता अपने बालक-बालिकाओं को उनके यौवनावस्था तक यह अच्छी प्रकार बताएँ कि बालक और युवक कैसे बिगड़ते हैं, और उसके क्या

क्या फल उनको भोगने पड़ते हैं। वे उन्हें इसकी सजीव और हृदय-स्पर्शी कथाएँ भी सुनाएँ। माँ और बाप को सदा इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि बालकों का हृदय अत्यन्त कोमल होता है। उनके हृदयों में संसार के चरित्रों का तुरन्त और स्थायी प्रभाव पड़ता है। यदि उनको घर में दुराचार और दुराचारियों से घृणा पैदा कराने वाली बातें सुनने-जानने को न मिलीं, तो वे घर के बाहर, पतित मनुष्यों के द्वारा जो दुष्प्रवृत्तियाँ सीखेंगे, वह फिर उनके जीवन से निकाले न निकलेंगी। माँ-बाप जब घर में अपना समय किसी काम में न देखें और विशेषकर संध्याकाल, जब वे शान्त और स्थिर होकर लेटें, आराम करें, उस समय वे अपने बालक-बालिकाओं को अपने पास बुलाकर उनसे बातें करें, उनको सदाचार की बातें सुनावें, प्रतिभाशाली और महापुरुषों के जीवन की बातें सुना-सुनाकर उनकी प्रवृत्तियों को उस ओर अग्रसर करें जिससे वे बालक भी वैसे ही बनने की चेष्टा करें। स्वास्थ्य और पराक्रम क्या वस्तु है और उससे जीवन किस प्रकार सुखी बनता है, मनुष्य का स्वास्थ्य और पराक्रम कैसे नष्ट होता है, और उसका मनुष्य के बाल्यकालीन दुराचरण से क्या सम्बन्ध होता है, जो बालक बाल्यकाल में बिगड़ जाते हैं, उनका जीवन किस प्रकार नष्ट होता है—क्या-क्या उनको यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, जिनसे कभी उनको निष्कृति नहीं मिलती, यह सब बालकों को बताने—समझाने की बातें हैं, जो उठते-बैठते और ख़ाली समय में माँ-बाप सरलतापूर्वक कर सकते हैं। जिस प्रकार वे घर के काम-काज नियम से नित्य करते

हैं, उसी प्रकार अपने अवकाश के समय बातें करने के लिए नियम बाँध लेना चाहिए। बालकों को जिस प्रकार की बातें सुनाई और समझाई जाती हैं, उन्हीं का उनके जीवन पर प्रभाव पड़ता है। वकीलों के लड़के, वकालत ही की बातें क्यों जानते हैं और किसानों के लड़के-लड़कियाँ खेती के कामों से क्यों परिचित होती हैं? केवल इसीलिये कि उन्होंने उनको अपने जीवन काल में देखा-सुना है और उनके सम्बन्ध में उन्होंने अपने घर पर शिक्षा पाई है।

बालकों को उनकी बारह-चौदह वर्ष की अवस्था से लेकर काम-विषयक बातों की जानकारी, कामेन्द्रिय और उसके अंग-प्रत्यंगों का यथावश्यक ज्ञान, माता और पिता के द्वारा होना चाहिए। उनको भूल जाना चाहिए कि इन बातों के करने में लज्जा और संकोच होना आवश्यक है। काम-शिक्षा का अर्थ जो मैथुन-मात्र से लेते हैं, वे न केवल भूल करते हैं, वरन् वे सत्य की हत्या करते हैं और बहुत बड़े अपराधी हैं। काम-शिक्षा क्या है और उसकी किन बातों की जानकारी होना चाहिए, इस बात का विश्लेषण "काम-विज्ञान में भारत और पाश्चात्य जगत्"—नामक अध्याय में पाठक पढ़ेंगे। इसलिए इस परिच्छेद में उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा जा सकता। काम-विषयक अभिज्ञता और जानकारी बालकों को होनी चाहिए, यहाँ पर इस आवश्यकता की ही पुष्टि की जाती है। उसका विशेष विश्लेषण और विवेचन उसी परिच्छेद में देखना चाहिए। हाँ, उसकी अनभिज्ञता से किस-किस

प्रकार दुर्घटनाएँ उत्पन्न होजाती हैं, इस पर एक छोटा-सा उदाहरण दे देना बहुत आवश्यक जान पड़ता है।

लखनऊ में एक युवक जिसकी अवस्था बाईस-तेईस वर्ष की थी, एक मकान में रहा करता था। वह अकेला था और लखनऊ में, एक आफ़िस में, नौकरी करता था। उसकी लिंगेन्द्रिय के अग्रभाग की जो सुपाड़ी कहलाती है, उसकी खलड़ी खुलती नहीं थी। उसको यह मालूम था कि दूसरे लोगों की यह खुला करती है। इस बात को वह अपनी एक कमी समझता था ; पर लज्जा और संकोच के कारण, उसने कभी किसी के सामने अपनी यह अवस्था प्रकट नहीं की। अपने समय के युवकों की सम्मति के अनुसार, वह तेल की सहायता से, उसको खोलने का प्रयत्न किया करता था। एक दिन रात की घटना है, उसने उसको खोलने का बड़े कष्ट के साथ प्रयत्न किया। फल यह हुआ कि उसकी खलड़ी आधी खुल गई। वह वेदना के आधिक्य के कारण उसको अधिक नहीं खोल सका। उसने खुली हुई खलड़ी, जहाँ तक वह खोल सका, वहीं पर रहने दी, जिससे खलड़ी का मुख, जो तंग है, ढीला हो जाय। वह कष्ट के साथ सोगया। रात को दो-तीन बजे के समय उसको अधिक कष्ट होगया। वह जाग पड़ा। लालटेन जलाकर उसने देखा, तो उसकी लिंगेन्द्रिय का अग्रभाग भयानक रूप से सूज गया था। उसकी वेदना उत्तरोत्तर बढ़ती गयी और रो-रोकर उसने सबेरा किया। दूसरे दिन उसकी अवस्था अत्यंत शोचनीय होगयी। वह डाक्टरों को दिखाया गया, और तीसरे दिन दो प्रसिद्ध डाक्टरों के

द्वारा क्लोरोफ़ार्म की सहायता से उसका ओपरेशन हुआ। उसका ओपरेशन साधारण न था, खलड़ी का तंग मुँह, लिंगेन्द्रिय के फूल जाने से, माँस में छिप गया था, लिंगेन्द्रिय की अवस्था देखने से अत्यन्त भयानक होगयी थी। ओपरेशन के डेढ़ मास पश्चात् वह चलने-फिरने के योग्य हुआ। यदि वह युवक उस समय कहीं देहात में होता तो निश्चय ही उसकी मृत्यु होगयी होती। वह बच तो गया; परन्तु इसमें उसको बड़ी आर्थिक हानि उठानी पड़ी। इस प्रकार की एक-दो नहीं, अनेक दुर्घटनाएँ सुनी और देखी जाती हैं। और यह सब उस अनभिज्ञता के परिणाम-स्वरूप हैं। सरकारी अस्पतालों में इसके सम्बन्ध में इतने अधिक भयानक दृश्य देखने में आते हैं जो अत्यंत लज्जास्पद हैं। उनका यहाँ इस छोटी-सी पुस्तक में लिखना बहुत कठिन है। लोगों को जब इस विषय की जानकारी की चिन्ता होगी तो वे प्रायः नित्य ही इस प्रकार की दुर्घटनाएँ देखेंगे और सुनेंगे। अभी तो अवस्था यह है कि यदि कोई पुरुष किसी की यह अवस्था देखता भी है तो वह अपने जीवन का उससे कुछ सम्बन्ध ही नहीं समझता। यदि हम कभी किसी को प्लेग की बीमारी से मरते देखें तो हमें समझना चाहिए कि वह प्लेग की बीमारी हमारे और हमारे कुटुम्ब के लिए भी है। बालकों के काम-विषयक जीवन का उत्तरदायित्व जब मातापिता अपने ऊपर लेंगे, तभी बालकों और युवकों के जीवन के कुत्सित आचरण दूर हो सकते हैं और उसी अवस्था में वे बालक और युवक आजीवन सुखी रह सकते हैं।

वीर्य का वैज्ञानिक विश्लेषण



र्य इतना साधारण और व्यापक शब्द है कि उसकी परिभाषा करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। बालकों से लेकर बड़े-बूढ़े तक, सभी, उसे जानते हैं। यहाँ पर वीर्य के सम्बन्ध की उन बातों पर प्रकाश डालना है जिनसे प्रायः अधिकांश लोग अपरिचित और अनभिज्ञ रहते हैं।

पुरुष का वीर्य गाढ़ा और द्रव पदार्थ है, जो स्त्री के रज से मिलने पर संतान उत्पन्न करता है। जिस समय वीर्य स्खलित होता है, उस समय स्पर्श करने से वह कुछ उष्ण जान पड़ता है। गोंद की तरह उसमें लेस होती है। वीर्य संसार की उत्पत्ति का साधन है—उसके द्वारा सृष्टि-रचना का

कार्य होता है। वह प्रकृति की असामान्य वस्तु है। इसीलिए वैज्ञानिकों ने उसके सम्बन्ध में इस प्रकार के अनेक विश्लेषण किए हैं, जिनका मानव-समाज को, किसी युग में, कुछ भी ज्ञान न था। उन समस्त बातों की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। जब तक हम किसी वस्तु की पूर्ण जानकारी नहीं रखते, तबतक हम उसका उचित और आवश्यक उपयोग नहीं कर सकते। समाज में वीर्य का कितना अधिक दुरुपयोग होता है, यह बताने की बात नहीं है, सभी उसका अनुभव करते हैं और जानते हैं। अपने उस दुरुपयोग के लिए सभी लोग पश्चात्ताप करते हैं। किन्तु पश्चात्ताप उस समय नहीं करते जब वे उसका दुरुपयोग करते हैं। पश्चात्ताप उस समय करते हैं जब वे उसका दुरुपयोग कर चुकते हैं और उसका दुष्परिणाम भोगते हैं। यदि उनको दुरुपयोग करने के पूर्व उसका पूर्ण ज्ञान होता, तो वे कभी दुरुपयोग न करते।

वीर्य में कई प्रकार के अंश पाये जाते हैं। कुछ तो उसमें जल की भाँति द्रव पदार्थ पाया जाता है, यह अँगरेज़ी में Liquor Semenis कहलाता है। इसको हिन्दी में वीर्य का तरल पदार्थ कह सकते हैं। उसमें कुछ अंश जो अंडे के समान श्वेत अंश पाया जाता है वह Albumin कहलाता है। उसके अतिरिक्त उसमें कुछ ठोस परमाणु पाये जाते हैं। उन परमाणुओं के दो भाग होते हैं सेमीनल ग्रेन्यूल्ज़ और स्परमेटोजोआ अर्थात् वीर्य के दाने और उसके जन्तु। इसके दाने बहुत सूक्ष्म होते हैं। उसमें जो कीड़े पाये जाते हैं, वे दुमदार होते हैं। उनको डाक्टरों ने जीवित स्वीकार किया है। उनका कहना

है कि वे कीड़े वीर्य में उसी प्रकार चलते-फिरते हैं जिस प्रकार जल में मछलियाँ। वीर्य के ये अंश अणुवीक्षण यन्त्र के द्वारा देखे जाते हैं, बिना उस यन्त्र के कुछ भी नहीं मालूम होसकता। जब उस यन्त्र से सावधानी के साथ देखते हैं तो उसमें अनेक अत्यन्त सूक्ष्म कीड़े चलते-फिरते दिखायी देते हैं। उनकी पूँछ पतली और सिर मोटे होते हैं। इस यन्त्र से देखनेवालों का कहना है कि ये कीड़े सदा आगे की ओर चलते हैं, पीछे की ओर नहीं मुड़ते।

पुष्ट वीर्य गाढ़ा होता है। उसमें वीर्य-जन्तुओं की अधिकता होती है। जिनका वीर्य पुष्ट नहीं होता, उनका पतला होता है और उसमें वीर्य के कीड़े कम पाये जाते हैं। वीर्य के नाम से जितना अंश स्खलित होता है, वह कभी वीर्य नहीं होता। उसके आस-पास, उसी के रंग-रूप में, द्रव अंश पाया जाता है। डाक्टरों का अनुमान है कि युवा पुरुष के एक बार स्खलन में सवा तोला वीर्य निकलता है; पर उसमें वास्तविक वीर्य आठ माशे से अधिक नहीं होता।

वीर्य की उत्पति कैसे होती है, इसके सम्बन्ध में जानना बहुत आवश्यक है। परन्तु उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत पाये जाते हैं। उसके सम्बन्ध में आयुर्वेद में जो उल्लेख पाया जाता है, उसको देखते हुए यूनानी मत विभिन्नता रखता है और यूनानी मत जो प्रतिपादन करता है, वह डाक्टरों के मत से नहीं मिलता। वीर्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आयुर्वेदिक, यूनानी और डाक्टरी तीन मत पाये जाते हैं और तीनों ही एक-दूसरे के प्रतिकूल हैं। प्रत्येक मत

का पृथक्-पृथक् उल्लेख करने से इस विषय का विस्तार अधिक होजायगा, इसलिए तीनों ही मत देखते हुए जो उचित और उपयुक्त जान पड़े, उसी का यहाँ पर उल्लेख करना अधिक अच्छा होगा। यद्यपि तीनों मतों में कौन ठीक और उपयुक्त है, यह निर्णय करना साधारण काम नहीं है। फिर भी वीर्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में तीनों मतों का पृथक-पृथक अध्ययन करने से जो अधिक उपयोगी, कुछ सीधा-सादा और विश्वस्त जान पड़ता है, उसीका संक्षेप में यहाँ पर विवेचन करना है।

शरीर के प्रत्येक अंग को शक्ति पहुँचाने के लिए रुधिर में गुण होते हैं। वह रुधिर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रगों के द्वारा शरीर के प्रत्येक अवयव में पहुँचता है। वह उस अवयव का दूषित रक्त खींच लेता है और उसको नवीन रक्त पहुँचाता है। दूषित रक्त दिल और फेफड़े में चला जाता है, वहाँ वह शुद्ध होता है। इस प्रकार रुधिर की यह गति बराबर जारी रहती है। रुधिर धमनियों के द्वारा पहुँचता है और स्याह होकर शरायों के द्वारा वापस आता है। यह रुधिर जब दौरा करता हुआ अंडकोष में पहुँचता है तो अंडकोषों की गिलटियाँ इस रुधिर से अपना आहार प्राप्त कर लेती हैं। इसके पश्चात् उन गिलटियों से जो द्रवपदार्थ निकलता है, वही वीर्य कहलाता है। उस द्रवपदार्थ के भीतर दाने-से बनते हैं, और वे दाने पक जाने पर जब फटते हैं, तब उनमें से अत्यंत छोटे-छोटे कीड़े निकलते हैं। ये दाने जबतक अपरिपक्व रहते हैं, वीर्य उपयोग के योग्य नहीं होता। इस अपरिपक्व अवस्था में जो वीर्य का स्खलन

करते हैं, उनका वीर्य पतला पड़ जाता है। पतला होने से वह अपने वास्तविक गुणों से असमर्थ और निर्बल होजाता है।

यह तो हुई वीर्य की अवस्था। अब प्रश्न यह है कि जो व्यक्ति अधिक विषयी होते हैं, और जो अधिक विषय-भोग में मस्त रहते हैं, वे कृषकाय और निर्बल शरीर क्यों होते हैं। ऊपर दिखाया जा चुका है कि रुधिर अंडकोष में पहुँचकर वीर्य बनता है, अर्थात् अंडकोष का कार्य है वीर्य प्रस्तुत करना। वीर्य बनने का कार्य वीर्य के प्रयोग पर निर्भर होता है। जो लोग अधिक मैथुन करते हैं, उनके अंडकोष को अधिक वीर्य बनाना पड़ता है और जब वीर्य बनने में रक्त का अधिक प्रयोग होता है तो शरीर के दूसरे अंगों और अवयवों में रुधिर उतना नहीं पहुँचता जितना पहुँचना चाहिए। उनके शरीर निर्बल होने का यही कारण है। डाक्टरों का कहना है कि जो अधिक मैथुन नहीं करते, उनके अंडकोष कम परिमाण में वीर्य तैयार करते हैं और विलम्ब में तैयार करते हैं।

जिस प्रकार गर्मी पाकर घी पिघलता है, उसी प्रकार वीर्य भी पिघला करता है। वीर्य पर मानसिक भावों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। मन का शुद्ध भाव और संयम वीर्य को शान्त और स्थिर रखता है; किन्तु जब मन अशुद्ध होता है, उसमें गंदे और अपवित्र विचार उत्पन्न होते हैं तो कामोत्तेजना का आविर्भाव होता है। यह उत्तेजना वीर्य को पिघलाती है, जिससे वह द्रवित होकर इन्द्रिय-द्वारा स्खलित होता है। जिनके मानसिक भावों में विषय-भोग के

विचार अधिक रहा करते हैं, उनमें कामोत्तेजना अधिक उत्पन्न होती है, और यह अधिकता वीर्य को द्रवित बनाती है। यह अवस्था अच्छी नहीं होती। मैथुन के अतिरिक्त प्रायः अधिकांश समय जिनके विचार अपवित्र रहा करते हैं, उनका वीर्य द्रवीभूत होकर निर्बल और अस्थिर हो जाता है। इस प्रकार के व्यक्तियों को स्वप्न-दोष की बीमारी हो जाती है।

जो व्यक्ति स्त्रियों के सम्पर्क में अधिक रहा करते हैं और उनके साथ हँसी-मनोरंजन में अपना समय बिताते हैं, उनके मानसिक भावों में काम अधिक जागरित रहा करता है, और जिससे वीर्य में अशान्ति और अस्थिरता उत्पन्न होती है। ये अवस्थाएँ वीर्य को निर्बल और असमर्थ बनाने में स्त्री सहवास से अधिक हानिकर होती हैं। मन की इन भावनाओं से वीर्य को उष्णता प्राप्त होती है, जिसके कारण वह अपने स्थान से चञ्चल होजाता है। स्त्री-प्रसंग में यह चञ्चलता और अस्थिरता एक बार होती है और स्खलन के पश्चात् शान्त हो जाती है, किन्तु मन की उन दुर्बल भावनाओं से वीर्य की अस्थिरता और चञ्चलता बराबर जारी रहती है जिससे वीर्य के अस्तित्व को बड़ी हानि पहुँचती है। मनोभावों में विकार उत्पन्न करनेवाले विचार पुरुष के पुरुषत्व को निर्बल बनाते हैं। जो पुरुष पर-स्त्रीगामी होते हैं उनके मानसिक भाव अत्यंत विकृत रहा करते हैं, वे प्रत्येक समय व्यभिचार-पूर्ण बातें सोचा करते हैं। इसका फल यह होता है कि उनकी काम-शक्ति अत्यंत निर्बल हो

जाती है। इस प्रकार की अवस्थाओं का अधिकांश यह प्रभाव पड़ता है कि उनमें अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और फिर जीवन-भर साथ नहीं छोड़तीं।

अविवाहित युवकों और युवतियों को इस प्रकार के विचारों से सदा दूर रहना चाहिए और गंदे विचार पैदा करनेवाले व्यक्तियों के सम्पर्क में न आना चाहिए। वर्तमान काल में समाज का जीवन बहुत अपवित्र हो गया है—उसमें संयमित जीवन का अंश बहुत कम रह गया है। नाच, स्वाँग, थियेटर, नाटक आदि संयम नष्ट करने वाले साधन हैं। जिनको सुख का जीवन बिताना है उनको अपनी अवस्था पर विचार करना चाहिए और भविष्य में आने वाली दुर्घटनाओं से बचने के लिये जीवन को संयमित बनाना चाहिए। वीर्य की अन-भिज्ञता से युवक पुरुषों में किस-किस प्रकार की यातनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं और किन-किन बीमारियों में उन्हें फँसना होता है, इसकी जानकारी वैद्यों और डाक्टरों को बहुत अधिक रहा करती है। इस प्रकार की बातों पर जब कोई वैद्य अथवा डाक्टर प्रकाश डालता है तो पता लगता है कि इस प्रकार के कैसे-कैसे भयानक और विल-क्षण रोगियों से उनको काम पड़ता है। युवक अपने आपको वैद्य या डाक्टर के सम्मुख नहीं लाते, वे प्रायः पत्रों-द्वारा बातें करते हैं। इन पत्रों में वे अपनी अवस्था स्पष्ट रूप से बता भी सकते हैं। इसीलिए वे अधिकतर पत्रों का आश्रय लेते हैं। उन रोगियों के सम्बन्ध में यदि विशेष विवरण यहाँ पर दिया जाय, तो यह परिच्छेद बहुत बढ़ जायगा। उनकी

विशेष-विशेष बीमारियों के सम्बन्ध में किस-किस प्रकार के पत्र आते हैं, यदि उनका संक्षिप्त रूप दिया जासकता, तो पढ़नेवाले नवयुवकों और युवतियों की जानकारी के लिए अधिक उपयोगी होता। परन्तु यह कर सकना यहाँ कठिन जान पड़ता है। इसलिए कि इसके सम्बन्ध में सैकड़ों पत्र देखने को मिलते हैं, जो सभी अपने-अपने जीवन में विशेषता रखते हैं। सैकड़ों की संख्या में इस प्रकार के रोगी मिलते हैं जो सभी अपनी लीलाओं में एक-दूसरे से विभिन्नता रखते हैं। एक-एक घटना का पूर्ण विवरण जानकर, उसके सम्बन्ध में इतने अधिक परिमाण में उल्लेख करना, जो पढ़नेवालों की समझ में ठीक-ठीक आजाय—वे पूर्ण रूप से इन दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में परिचय और जानकारी प्राप्त कर सकें, यह कठिन ही नहीं, यहाँ पर असम्भव है। इस छानबीन को लेकर उस पर पूर्ण प्रकाश डालने के लिए एक समूची पुस्तक लिखी जासकती है। अतएव उसके सम्बन्ध में अधिक न लिखकर इस प्रकार की दो घटनाओं का यहाँ पर उल्लेख किया जाता है, जिनके घटना-काल में उनके भीषण परिणामों की आशंका भी नहीं हुई थी।

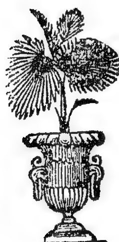
एक डाक्टर साहब के यहाँ किसी व्यक्ति का पत्र आया। पत्र अँगरेजी में था। उसका सारांश यह है—प्रिय डाक्टर साहब, अपनी जिस बीमारी के सम्बन्ध में आपको लिख रहा हूँ वह मुझे तीन वर्षों से है। जिस समय मैं कालेज में पढ़ता था, उस समय इसका सूत्रपात हुआ था। मैं कालेज में पढ़ता था और मकान किराये लेकर शहर में रहता था। मेरा मकान बड़ा था। उसमें एक किराये-

दार रहता था। वह सपत्नीक था। मेरा सोने का कमरा उसके सोने के कमरे के बिल्कुल निकट था। किरायेदार अपनी स्त्री के साथ लेटता था। उसका प्रभाव मेरे ऊपर बहुत बुरा पड़ता था। मैं उनके इतना निकट होता था कि उनकी कोई बात मुझसे अप्रकट न रह सकती थी। कुछ समय के पश्चात् मुझे बहुमूत्र की बीमारी होगयी। पहले कुछ दिनों तक तो मैंने इसकी कुछ भी परवा न की। कुछ दिन पश्चात् उसकी अवस्था अधिक होगयी और यहाँ तक बढ़ी कि एक-एक मिनट में मूत्र आने लगा। प्रत्येक समय मुझे उसकी हाजत बनी रहती। मैंने एक वैद्य की चिकित्सा प्रारम्भ की। पर कुछ लाभ न हुआ। डेढ़ वर्ष तक मैं इस बीमारी की चिकित्सा करता रहा और पढ़ता भी रहा; किन्तु जब अच्छा न हुआ और शरीर बहुत दुर्बल होगया तो पढ़ना छोड़कर घर चला आया। यहाँ आये हुए मुझे दूसरा वर्ष समाप्त होरहा है। मैंने अबतक वैद्यों की ही चिकित्सा की है, उनके परहेज़ों ने मेरे शरीर को बनाय सुखा डाला है। लाभ तो बहुत कुछ हुआ है। इस बीमारी के साथ मेरी अद्भुत अवस्था होगयी है। मैं विवाहित हूँ, मेरी स्त्री मेरे परिवार ही में रहती है। अब शीघ्रपतन से मेरी बड़ी बुरी दशा होगयी है। सच्ची बात यह है कि मैं स्त्री-सहवास के योग्य नहीं रहा। मुझमें एक मिनट की भी शक्ति और स्थिरता नहीं रह गयी! इस अवस्था को आपके सम्मुख रखता हूँ। पहले तो मुझे यह बताइए कि मैं इससे कभी छुट्टी पासकता हूँ कि नहीं। यदि आपका विश्वास हो कि मैं अच्छा होजाऊँगा तो आपकी ही चिकित्सा करना चाहता हूँ।

एक अन्य महाशय ने जो पत्रलिखा उसका एक अंश ज्यों-का-त्यों नीचे जाता है—"मैं अपने एक मित्र की बीमारी से बहुत दुखी और चिन्तित हूँ। बीमारी यह है कि मेरे मित्र कलकत्ते में नौकरी करते थे। जहाँ वे रहते थे, उसी घर में एक युवती रहती थी। युवती का वहाँ मायका था। उस युवती से और मेरे मित्र से प्रेम हो गया। मित्र जो कुछ पैदा करते, उसी को खिला देते। जो कुछ वहाँ रह कर उन्होंने धन पैदा किया, सब उसी के निमित्त व्यय कर दिया। परन्तु वह युवती मित्र के हाथ न लगी। वह चाहती थी और मित्र को जी-जान से प्रेम करती थी; परन्तु जिस परिवार में वह रहती थी, उसमें रहकर मित्र की इच्छा-पूर्ति में सफलता न हुई। उसके आकर्षण में वे चौबीस घंटे विषय-वासना में डूबे रहते थे। वहाँ से असफल होकर मित्र अपने घर आगये हैं। अब उनकी आश्चर्यजनक अवस्था होगयी है। पहले उनको वहीं पर सूजाक हुआ था। चिकित्सा करने पर वह अच्छा होगया था; पर यहाँ आने पर वह फिर पैदा होगया है। अब वह ज़ोर पकड़ रहा है। इसके साथ ही उनकी अवस्था यह होगई की है कि वे स्त्री-सहवास में अपने आपको असमर्थ पाते हैं। उनका शरीर पहले की अपेक्षा बहुत दुबला होगया है। अब आपका ही भरोसा है। आप प्रसिद्ध डाक्टर हैं, जैसी आज्ञा दीजिए वैसा किया जाय।"

यह अवस्था होरही है। और होरही है बहुत बड़ी संख्या में! हमें जो कोई कष्ट है, उसे केवल हम जानते हैं। पर हमें क्या पता कि समाज का समाज ही आज इस दुरवस्था को प्राप्त होरहा है!

समाज को भविष्य में इन दुरवस्थाओं से बचाने के लिए काम-विज्ञान के पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त और दूसरा कोई मार्ग नहीं है।



वीर्य की उत्पत्ति और उसका उपयोग



र्य से शरीर का क्या सम्बन्ध है और वह शरीर के किन-किन कामों में आता है, यह जान लेना बहुत आवश्यक है। जब तक किसी की योग्यता और प्रतिभा नहीं जानी जाती तब तक उसका सम्मान नहीं किया जा सकता। यदि हमको वीर्य के सम्बन्ध की पूर्ण जानकारी हो—वह जीवन में हमारे किन-किन कामों में आता है, यह हम जानते और समझते हों, तो यह कभी सम्भव नहीं है कि हम उसका सम्मान न कर सकें, उसका संरक्षण न कर सकें। यह निर्विवाद है कि हमको उसका यथावत् ज्ञान नहीं है और

उसकी मान-मर्यादा का परिचय न होने के कारण ही हम उसकी प्रतिष्ठा नहीं करते। फल यह होता है कि न केवल हम उसके उपकारों से वंचित रहते हैं, प्रत्युत हम अपने जीवन में उसको खोकर निराधार, निर्बल और पुरुषार्थहीन हो जाते हैं!

जिसके मान-मर्यादा की हम प्रतिष्ठा करने जारहे हैं वह क्या है और उसकी उत्पत्ति क्या है, यह जान लेना भी उसके साथ-साथ उपयोगी है। हम जो कुछ खाते हैं, वह आमाशय में जाता है, आमाशय का काम है उसे परिपक्व बना देना। जितना वह परिपक्व होता जाता है, वह एक छोटी-सी अंतड़ी में चला जाता है, यह अंतड़ी पक्वाशय कहलाती है। भोजन में जो मल और विकार होता है, पक्वाशय उसको पृथक करके मल और मूत्र के रूप में मलाशय और मूत्राशय में भेज देता है। विकार के पृथक होजाने पर रस रह जाता है, यह रस रुधिर में सम्मिलित होजाता है और वह फिर जठराग्नि के द्वारा पकता है। उस रस में भी कुछ विकार होता है। अतएव उसके पक जाने पर उसका विकार कफ़, मुख के पानी और थूक, और आँखों के जल के रूप में पृथक होकर अपने-अपने मार्ग से बाहर निकल जाता है। रस से जब ये विकार पृथक होजाते हैं तो फिर वह शेष बचा हुआ अंश रुधिर बन जाता है। उसके रुधिर बनने के पूर्व उस रसके दो भाग हो जाते हैं, सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्म भाग का रुधिर बन जाता है और स्थूल भाग जठराग्नि के द्वारा फिर पकता है। उससे फिर मल पृथक होता है। शरीर में पित्त का जो अंश हुआ करता है, वह इस स्थूल भाग का

विकार है। इससे पित्त के पृथक होजाने पर वह फिर दो भागों में हो जाता है, सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्म भाग मांस बन जाता है और स्थूल भाग शेप रहकर फिर पकता है। इस बार पकने से उसका विकार फिर पृथक होता है। यह विकार शरीर के सूक्ष्म अवयवों कान आदि के द्वारा बाहर आता है और शेष भाग चरबी बन जाता है। यह चरबी फिर पकती है जिससे उसका मल और विकार पृथक होता है। शरीर का पसीना, लिंगेन्द्रिय का लुआबदार पानी, जिह्वा और दांतों का मैल चरबी का विकार कहलाता है। इन विकारों के पृथक होने पर उसके दो भाग हो जाते हैं, एक भाग से हड्डियाँ बनती और पुष्ट होती हैं और शेष भाग फिर पकता है। उसका मल उससे पृथक होता है। शरीर में जो रोम, बाल और नख होते हैं, वे उसके मल हैं। इनके पृथक होजाने पर शेष भाग मज्जा बन जाता है। इसके पश्चात् मज्जा पकती है। पकने पर उसका विकार नाक, आँख के द्वारा बाहर होता है। अब शेष भाग वीर्य बन जाता है। इस प्रकार वीर्य की उत्पत्ति होती है।

हमारे शरीर के भीतर कितने प्रकार के यंत्र काम करते हैं और वे कितने अधिक और सूक्ष्म हैं, हम जो भोजन करते हैं, वह कहाँ-कहाँ जाता है यह हमें भली भाँति समझने की आवश्यकता है। प्रत्येक यंत्र उसके मल और विकार को पृथक करने में अपना काम करके दूसरे यंत्र के पास भेज देता है। इस प्रकार भोजन क्रमशः अपना रूप परिवर्त्तित करते-करते और क्रमशः एक-एक यंत्र के पास पहुँचते-पहुँचते अंत में जाकर वीर्य बनता है। शरीर-शास्त्र-

वेत्ताओं ने अपने अनुसंधान से निश्चय किया है कि मनुष्य जो भोजन करता है, तीस दिनों के पश्चात् वह जाकर वीर्य बनता है। यह वीर्य हमारे शरीर के प्रत्येक अवयव में व्यापक होता है और उन अंगों को पुष्ट एवम् शक्तिशाली बनाता है। इस वीर्य के द्वारा हमारा शरीर सदा-सर्वदा नवजीवन प्राप्त करता रहता है।

वीर्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में संसार के तीन विभिन्न मत पाये जाते हैं—भारतीय, यूनानी और पश्चिमीय। तीनों ही उसकी उपयोगिता और श्रेष्ठता को तो समान रूप से स्वीकार करते हैं, किन्तु उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्नता रखते हैं। तीनों ही मतों को सामने रखकर जो अनुसन्धान संसार में विशेष स्थान रखता है वह संक्षेप में, किन्तु स्पष्टता के साथ, ऊपर दिखाया गया है। यूनानी मत का यहाँ पर उल्लेख करने से उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में जटिलता बढ़ जायगी; किन्तु उससे कुछ अधिक लाभ न होगा। पश्चिमीय शरीर-शास्त्रकार अपनी विभिन्नता में अत्यन्त संक्षिप्त विवरण रखते हैं, उसका कुछ अंश विभिन्नता रखते हुए भी जानने और समझने के योग्य है। इसलिये संक्षेप में उसका उल्लेख यहाँ कर देना आवश्यक होगा।

पश्चिमीय विद्वानों का विश्वास है कि मनुष्य के दो अंडकोष होते हैं। ये अंडकोष दो प्रकार का मल (Secretions) उत्पन्न करते हैं—भीतरी और बाहरी (Internal and External)। यही मल वीर्य है। ये दोनों प्रकार के वीर्य अपना पृथक्-पृथक् काम करते हैं। भीतरी मल शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग में प्रविष्ट हो जाता

है और उनमें व्यापक होकर उनको शक्ति एवम् कान्ति प्रदान करता है। यह आँखों को ज्योति, मुख-मण्डल को कान्ति और शरीर के अंगों को रूप तथा सुडौल आकार प्रदान करता है। बालक और बालिकाएँ चौदह और पन्द्रह वर्ष की अवस्था में पहुँच कर एक साथ सौन्दर्य और स्वास्थ्य प्राप्त करती हैं। इसका कारण यह है कि उनकी यही अवस्था वीर्य की उत्पत्ति और उसके विकास के लिए होती है। वीर्य का यह भीतरी अंश, शरीर के भीतर ही रहकर अपना काम करता है और इसीलिए वह भीतरी कहलाता है। इसकी वास्तविकता और उपयोगिता का सब से बड़ा प्रमाण यह है कि जो पशु बधिया कराके, जीवन-भर के लिए, नपुंसक बना दिये जाते हैं, वे न केवल पुरुषार्थ-हीन होजाते हैं, प्रत्युत उनके जीवन के वे समस्त विकास मारे जाते हैं जो प्राकृतिक रूप से उनमें होने को थे। यह परिवर्त्तन केवल इसीलिए होता है कि उनके अंडकोष क्रियाहीन बना दिये जाते हैं। इस प्रकार के पशुओं में घोड़े, बैल और बकरे प्रायः बधिया किये जाते हैं। जो बधिया करने से बच जाते हैं, उनमें, और जो बधिया किये जाते हैं, उनमें, जो अंतर पाया जाता है, वह अंतर स्पष्ट रूप से आभ्यांतरिक वीर्य के कार्य का प्रमाण देता है।

अंडकोष जो दूसरे प्रकार का मल उत्पन्न करते हैं वह वाह्य कहलाता है। इस भाग में वीर्य के कीटाणु होते हैं और उनमें एक नवीन जीवन उत्पन्न करने की शक्ति होती है। किन्तु जब इसका अपव्यय नहीं होता और वह जहाँ का तहाँ उपस्थित रहता है,

तो वह आभ्यान्तरिक (Internal Secretion) शरीर के प्रत्येक अंग और अवयव में प्रविष्ट होकर स्फूर्ति और नवजीवन उत्पन्न करता है।

वीर्य के दो उपयोग होते हैं—(१) शरीर को शक्तिशाली और पुष्ट बनाता है और (२) सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति रखता है। वीर्य के इन दो गुणों को भारतीय, यूनानी और पश्चिमीय तीनों ही एक स्वर से स्वीकार करते हैं। वीर्य कब उत्पन्न होता है, इस पर बड़ी मत-बिभिन्नता है। कुछ लोगों की धारणा है कि वीर्य यौवन के पूर्व, किशोरावस्था में, बनना प्रारम्भ होता है। कुछ लोगों का निर्णय है कि इससे छोटी अवस्था में ही वीर्य बनना प्रारम्भ हो जाता है। भिन्न-भिन्न लेखकों ने भिन्न-भिन्न धारणाओं का समर्थन किया है। उन सभी धारणाओं का अध्ययन करने से यह निश्चय होता है कि वीर्य अत्यन्त छोटी अवस्था में ही बनने लगता है। कारण यह है कि हम जो भोजन करते हैं उसका ही अंत में जाकर वीर्य बनता है। इस अवस्था में छोटे बच्चे जो खाते हैं, उसका भी वीर्य बनना चाहिए। अन्तर केवल इतना होता है कि पूर्ण अवस्था में जो वीर्य बनता है वह उपर्युक्त दो गुण रखता है, किन्तु बाल-अवस्था में जो वीर्य बनता है, वह अत्यन्त सुकुमार होता है और वह शरीर के पालन-पोषण में ही उपयोगी होता है। उस अवस्था का वीर्य इतना सूक्ष्म होता है कि उसका अस्तित्व कभी प्रकट नहीं होता। इसी लिए लोगों का विश्वास होता है कि बाल्य-

वस्था में वीर्य होता ही नहीं। बालकों की अवस्था के अनुसार वीर्य का आकार-प्रकार बढ़ता और पुष्ट होता है।

वीर्य का प्रधान काम है शरीर की रक्षा करना। वीर्य जब से उत्पन्न होने लगता है, इसी काम के करने में व्यय होता है। बाल्य, यौवन और वृद्धावस्था ये तीनों अवस्थाएँ इस वीर्य के आधार पर ही निर्भर होती हैं। बाल्यकाल में जो स्फूर्ति, स्वास्थ्य और सौन्दर्य होता है, वह केवल इसलिए होता है कि वीर्य का पूर्णांश शरीर के अंगों की रक्षा में ही उपयोग होजाता है, यौवन-काल में वीर्य का अधिकांश अपव्यय होता है और शरीर से बाहर होजाता है। इसीलिए बाल्यकाल की स्फूर्ति और चञ्चलता यौवन-काल में नहीं रह जाती। यही कारण बालकों के अधिक स्वस्थ और सुन्दर होने का है। स्वास्थ्य और सौन्दर्य यौवन-काल में कम न होना चाहिए, किन्तु उस अवस्था में, जब, वीर्य का बाहरी उपयोग अत्यन्त आवश्यक और उचित होता है तब तो उसका उपयोग करना ही पड़ता है। पर वर्तमान युग में वीर्य का कितना अनावश्यक और अनुचित अपव्यय होता है यह क्या किसी को बताने की आवश्यकता है? यही कारण है कि यौवनकाल में वीर्य शरीर में स्वास्थ्य, सौन्दर्य और पुरुषार्थ बढ़ाने का काम अधिक नहीं कर पाता। वृद्धावस्था में भी वीर्य बनता है; किन्तु अत्यन्त सूक्ष्म परिमाण में। इसका कारण यह है कि यौवन के पश्चात् शरीर की उष्णता कम होने लगती है और धीरे-धीरे बहुत कम होजाती है। उष्णता के कम होने से शरीर में सातों धातुओं के ठीक-ठीक बनने

का काम नहीं होता ; क्योंकि रस, रक्त, मांस, मेद (चरबी) अस्थि, मज्जा और वीर्य, ये सातों धातुएँ परिपाक होने पर ही बनती हैं। परिपाक होने के लिए उष्णता की आवश्यकता होती है। जितनी ही मनुष्य की अवस्था वृद्ध होती जाती है, उतना ही उसके शरीर में इन धातुओं के निर्माण का क्रम ढीला होता जाता है। वीर्य सब धातुओं के अन्त में बनता है, इसलिए अधिक वृद्धावस्था में वीर्य बनने का क्रम क्षय होजाता है। वीर्य के न होने से वृद्धावस्था दोनों ही कार्यों से वंचित होजाती है न तो वह शरीर का संरक्षण ही कर सकती है और न सन्तान-उत्पन्न करने के योग्य होती है। शरीर का स्वास्थ्य, सौन्दर्य और पुरुषार्थ वीर्य पर ही निर्भर होता है।

जब कामेच्छा उत्पन्न होती है अथवा काम-विषयक बातों की ओर मनोवृत्ति चञ्चल होजाती है, तो शरीर के प्रत्येक अंग से वीर्य खिंचकर अंडकोष में आजाता है और अंडकोष वीर्य को वीर्यकोष में छोड़ देते हैं। वीर्य जब तक अंडकोषों में रहता है तभी तक वह शरीर के काम में आसकता है, वीर्यकोष में आजाने पर वह फिर लौटकर न तो अंडकोषों में जा सकता है और न शरीर-निर्माण का कुछ काम कर सकता है। उस अवस्था में यदि मैथुन अथवा स्त्री-प्रसंग के द्वारा उसको बाहर न निकाल दिया जाय तो वह अपने आप बाहर जाने का प्रयत्न करता है। इस अवस्था में वीर्यकोष वीर्य को अपने संरक्षण में नहीं रख सकता। यहाँ पर यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। किसी पात्र में घी रखा जाता है, जब तक घी उस पात्र के संरक्षण में रहता है, तभी

तक वह पात्र उपयोगी होता है और जब घी उसके संरक्षण से निकलकर अपने आप प्रवाहित होने लगता है तो वह पात्र अनुपयोगी होजाता है। यही अवस्था उस वीर्यकोष की होती है। जब वीर्य अंडकोष से निकलकर वीर्यकोष में आजाता है, तो उसका निकलना अनिवार्य होजाता है; और यदि वह निकाला नहीं जाता तो उसमें इतनी शक्ति होती है जिससे वह वीर्यकोष के बन्धन को तोड़कर किसी-न-किसी प्रकार निकल जाता है। यही अवस्था होती है जब वीर्यकोष निर्बल, अनुपयोगी और उस घी के पात्र की भाँति होजाता है जो घी को अपने संरक्षण में नहीं रख सकता। वीर्य-कोष का निर्बल होजाना अत्यन्त भयानक होता है। आज समाज में जो शीघ्र पतन, धातुदौर्बल्य, वीर्यपात आदि दोष नब्बे प्रतिशत पाये जाते हैं, वे इसी वीर्यकोष की निर्बलता के परिणाम-स्वरूप हैं!

जो युवक अनावश्यक और मनोरंजन के लिए मनोवृत्तियों को गंदी करनेवाली काम-विषयक बातें किया करते हैं, उन्हें स्वप्न में भी कभी इस बात का अनुमान नहीं होता कि हमारी इस अवस्था का परिणाम क्या होगा। समाज में इस प्रकार के कितने ही युवक देखे जाते हैं जिनके विवाह नहीं हुए, स्त्री-सहवास के लिए जिनके पास साधन नहीं होते, वे भी धातु-दौर्बल्य और वीर्य-पात के इस प्रकार रोगी होजाते हैं कि जीवन-भर के लिए स्त्री-सहवास के लिए सर्वथा अयोग्य होजाते हैं। न उनको इसका कोई कारण मालूम होता है और न उनके माँ-बाप और शुभचिन्तकों को ही इस दुष्परिणाम

का कुछ अनुमान होता है। जिस समाज में युवकों के जीवन और उनके विचार अश्लील और अपवित्र होते हैं, वह समाज निर्बल, पुरुषार्थ-हीन और रोगी होता है। समाज राष्ट्र का कर्णधार होता है। जब समाज की यह दुरवस्था हो, तो राष्ट्र की अवस्था को क्या कहा जाय !

जिन बालकों, युवकों और पुरुषों को स्वास्थ्य, सौन्दर्य और पुरुषार्थ से प्रेम हो, उनका यह परम कर्तव्य है कि वे इन बातों से बहुत दूर रहें। जो लोग केवल मनोरंजन और विनोद के लिए इस प्रकार की बातों में समय खोते हैं, वे न केवल समय का अपव्यय करते हैं; प्रत्युत वे अपनी जीवन-शक्ति को निर्बल और अकर्मण्य बना डालते हैं। दुर्भाग्य की बात तो यह है कि जब लोग अपने जीवन में इस प्रकार के विष का बीजारोपण करते हैं तो उनको उस भीषण परिणाम का कुछ भी ज्ञान नहीं होता, जो उनके लिए अवश्यम्भावी होता है। यदि समाज को इस प्रकार की बातों का यथावत् ज्ञान हो तो क्या कभी सम्भव है कि वह जान-बूझ कर अपने जीवन का सत्यानाश करे !!



काम क्या है ?



ष्टि के समस्त जीवों में जीवन-शक्ति होती है। जिस क्रिया के द्वारा इस जीवन का प्रादुर्भाव होता है, उस क्रिया को काम कहते हैं। काम का मोटा अर्थ स्त्री-पुरुष का सहवास अथवा मैथुन होता है। जहाँ तक जीवन का सम्बन्ध है, सृष्टि में सर्वत्र, समस्त जीवों में, दो प्रकार के प्राणी पाये जाते हैं—स्त्री और पुरुष, नर और मादा। अपनी-अपनी जातियों में दोनों प्राणी इस क्रिया के द्वारा सृष्टि-रचना का काम करते हैं।

जीवन के साथ-साथ काम उत्पन्न होता है और वृद्धावस्था में, जीवन के अन्त तक, उसका अस्तित्व रहता है। बाल-जीवन में उसका अत्यन्त सूक्ष्म रूप होता है। यह सूक्ष्म रूप, अवस्था के अनुसार, वृद्धि पाता है और किशोर अवस्था में वह जागरित हो जाता है। यौवन के पूर्व किशोर अवस्था होती है। इस अवस्था में काम अपना आकार-प्रकार धारण करता है। इस अवस्था के बालक और बालिकाओं में जो स्वाभाविक स्वास्थ्य और सौन्दर्य होता है, वही स्वास्थ्य और सौन्दर्य काम का अपरिपक्व किन्तु जाग्रत और प्रकाशमान रूप है। यौवन के प्रारम्भ में काम की परिपक्वता प्रारम्भ होती है। यह परिपक्वता वीर्य की होती है, और वीर्य के उपयोग की क्रिया को काम कहते हैं।

जीवन की चार अवस्थाएँ होती है—बाल्य, किशोर, यौवन और वृद्धावस्था। काम पर इन्हीं चारों अवस्थाओं का प्रभाव पड़ता है। बाल और किशोर अवस्था में वह बढ़ता और परिस्फुटित अवस्था को प्राप्त होता है, यौवन में पूर्ण विकास को पहुँचकर परिपक्व होता है; और वृद्धावस्था में क्षीण होता है और धीरे-धीरे नितान्त क्षीण होजाता है। संसार के समस्त देशों में ये चारों अवस्थाएँ मानी जाती हैं। अन्तर केवल यह पड़ता है कि ये अवस्थाएँ कहीं कुछ देर में और कहीं कुछ शीघ्र आती हैं। यह अन्तर शीत और ग्रीष्म वातावरण से होता है। जो स्थान एवम् देश ठंडे होते हैं, वहाँ बाल्य और किशोर अवस्था के पश्चात् यौवन कुछ देर में आता है और जो ग्रीष्मप्रधान होते हैं, वहाँ शीघ्र आता है। इसी

लिए कितनी अवस्था में यौवन और बुढ़ापे का आगमन होता है, इसका परिमाण सब देशों में एक नहीं होता। काम का विशेष सम्बन्ध यौवन से होता है। यही अवस्था होती है, जब काम का उपयोग होता है; और यही अवस्था है, जब जीवन पर काम का उचित और अनुचित प्रभाव पड़ता है। इसीलिए यौवन-काल पर यहाँ कुछ प्रकाश डालना आवश्यक जान पड़ता है।

यौवन किसे कहते हैं और उसके लक्षण क्या हैं, इसका उत्तर देते हुए डाक्टर कारपेन्टर ने लिखा है—बालक और बालिका की गुप्त इन्द्रियाँ एवम् शरीर के कुछ अंग-प्रत्यंग यौवन के आगमन की सूचना देते हैं। यौवन के प्रारम्भ होते ही शरीर में अनेक परिवर्तन प्रारम्भ होजाते हैं। बालक और बालिका के अंग स्थूल, भारी और विकसित होने लगते हैं। मुँह पर मूछें दाढ़ी और गुप्त इन्द्रियों में बाल आ जाते हैं। गले की घुण्डी बढ़ जाती है। स्वर भारी और गम्भीर होजाता है। मन पर अनेक कल्पनाओं एवम् भावनाओं का उठना आरम्भ हो जाता है। यौवन की यह प्रारम्भिक अवस्था होती है। इस अवस्था में यौवन विकास की ओर बढ़ता है। काम का परिस्फुटन होता है; परन्तु वीर्य परिपक्व नहीं होता। इसीलिए काम के उपयोग का यह समय नहीं समझा जाता। इस अवस्था में वह केवल परिपक्वता प्राप्त करता है। कुछ आगे चलकर वह उपयोग करने के योग्य बनता है।

जीवन में काम की उपयोगिता का समय आने तक वीर्य पुष्ट होता है। मन की अवस्था चंचल हो जाती है। इस चञ्चलता में

लज्जा-जनित भावुकता का सम्मिश्रण होता है। बालक और बालिका इस अवस्था में ब्रह्मचारी रहते हैं। वे संयमित जीवन बिताकर पूर्ण यौवन को प्राप्त होते हैं। समाज से उनको संयम की शिक्षा दी जाती है। जिस प्रकार के सहवास में उनका जीवन अतिवाहित होता है, उसके द्वारा उनको साधु और तपस्वी जीवन का व्यवहार मिलता है। यह व्यवहार उनके जीवन को संयत बनाता है। बालक और बालिकाओं के जीवन की यह ब्रह्मचर्य-अवस्था कहलाती है। सभी देशों में यह अवस्था संयम और ब्रह्मचर्य के लिए मानी जाती है। हिन्दू-शास्त्रों में जीवन के चार भाग माने गये हैं। जीवन के इस काल को उनमें ब्रह्मचर्य आश्रम के नाम से पुकारा गया है। इस आश्रम को उनमें बड़ा महत्व दिया गया है। इसके पश्चात् गार्हस्थ्य जीवन आता है। उस जीवन में बालक और बालिका की अवस्था परिवर्तित होजाती है। उनका जीवन संसार के भोग-विलास की ओर प्रवाहित होता है। उसी अवस्था में काम का उपयोग होता है।

जीवन में काम स्वाभाविक होता है। काम सृष्टि-रचना में प्रकृति की कला है। इस कला के द्वारा प्रकृति ने विश्व को अनन्त काल के लिए जीवन प्रदान किया है। काम प्रकृति की वह कला है जिसके द्वारा संसार का जीवन अनन्त है—अपरिमित है। प्रकृति के निकट काम का अत्यन्त व्यापक महत्व है। इसीलिए संसार के समस्त देशों में और विश्व के बिभिन्न समाजों में काम को धार्मिक मान-मर्य्यादा प्रदान की गयी है। यह काम खेल और मनोरंजन

का साधन नहीं है, वह तो केवल सृष्टि-रचना के लिए प्रकृति की सुधा है, जिसे उस सृष्टि-रचयित्री प्रकृति ने विश्व को जीवन देने के लिए प्रदान किया है। इसके द्वारा स्त्री-पुरुष परस्पर मिलते हैं और प्रकृति के अभिप्राय को सफल बनाते हैं। काम का केवल यही उपयोग है।

काम का केवल एकही उपयोग है, सन्तान-उत्पत्ति। इस उपयोग में बड़ी सावधानी और संयम-नियम की आवश्यकता होती है। संयम और नियम केवल इस बात का कि प्रकृति-अभिप्राय के प्रतिकूल उसका कहीं—किसी प्रकार—उपयोग न हो। उसका अनुचित और अप्राकृतिक उपयोग उसी प्रकार विषमय है जिस प्रकार उसका उचित और प्राकृतिक उपयोग अमृतमय! संसार के समस्त शिक्षित और सभ्य समाजों में इसके औचित्य का स्मरण रखा जाता है। जो जातियाँ अत्यन्त अशिक्षित और ज्ञानशून्य होती हैं, वे भी उसके धार्मिक महत्व को समझती हैं। इसका दुरुपयोग अत्यन्त भयानक और विषाक्त है। जहाँ दुरुपयोग होता है, वहाँ इसके विषमय परिणाम स्पष्ट देखे जाते हैं। काम क्या है, जिन्हें इसका ज्ञान नहीं होता, वे ही इसका अनुचित उपयोग करते हैं और इसके दुष्परिणामों के फलस्वरूप आजीवन रोते हैं। इसका अनुचित उपयोग जीवन को इतना निर्बल, अशक्त और अनुपयोगी बनाता है कि पुरुष कभी भी सुखी नहीं रहता, इस अमृत को अपने दुष्कर्मों के द्वारा विष बना लेता है। जिस प्रकृति ने काम में सुधा का गुण उत्पन्न किया है और इस गुण को प्रदान करके जिसने उसका उचित

और प्रकृत उपयोग चाहा है, वह इसका अनुचित उपयोग कभी भी सहन नहीं कर सकती। जिसने इस काम में सुधा के गुण उत्पन्न किये हैं, उसी ने उसमें विष के फल को उत्पन्न किया है। यह दोनों फल उसके उचित और अनुचित उपयोग पर निर्भर हैं। काम क्या है, जिसने इसका ज्ञान नहीं प्राप्त किया, वह इसके महत्व को नहीं जान सकता। फल यह होता है कि वह अपने जीवन के सुखों को नष्ट कर देता है और आजीवन अपने दुर्भाग्य को कोसता है!

काम का उचित और प्रकृत उपयोग क्या है, संक्षेप में यहाँ इसपर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। इसका अनुचित उपयोग मनुष्य जीवन के अतिरिक्त और किसी में नहीं होता। मनुष्यों में जिनको इसका प्रकृत ज्ञान है, वे इसके दुष्परिणामों से अपनी रक्षा करते हैं और वे जातियाँ भी, जो बिलकुल ही अशिक्षित होती हैं, बहुत कुछ संरक्षित रहती हैं। किन्तु जो लोग थोड़े से प्रकाश में आजाते हैं परन्तु उसकी यथोचित जानकारी नहीं रखते, वे इसके भीषण दुष्परिणामों के शिकार होते हैं। कारण यह है कि मध्यम श्रेणी के लोग इस प्रकार के वायुमंडल में अपना जीवन व्यतीत करते हैं, जिसमें कामोत्तेजना के बढ़ानेवाले और अपना अनुचित प्रभाव उत्पन्न करनेवाले दृश्य होते हैं। इस प्रकार का जीवन अत्यन्त हानिकारक होता है। यौवन के प्रारम्भकाल से ही इसके दुष्परिणाम प्रारम्भ हो जाते हैं और उनके फलस्वरूप आजीवन सुख-संतोष से पृथक होकर रहना पड़ता है। इस प्रकार के लोगों का जीवन अत्यन्त करुणापूर्ण होता है। जिस समय वे

इन दुष्कर्मों में पड़ते हैं, उस समय उनको भविष्य में आनेवाले भयंकर परिणामों का ज्ञान नहीं होता ! इस प्रकार के लोग न केवल अपने जीवन को नष्ट करते हैं, वरन् अपने साथ-साथ अपनी स्त्री के जीवन का सुख-संतोष भी नाश कर देते हैं ! इसीलिए तो उनको उसके उचित उपयोग का ज्ञान होना आवश्यक है।



काम की व्यापकता और उपयोगिता



ष्टि में जितने जीव हैं, सब की एक-सी अवस्था है । जिस प्रकृति ने उनका निर्माण किया—जिस विश्व-पिता ने उनको जीवन दिया उसने सबको एक सूत्र में ही बाँधा है । उनके जीवन में जो सूक्ष्म अन्तर पाये जाते हैं, वे अन्तर हैं उनकी सुविधाओं के अनुसार । एक नियम और एक ही उद्देश्य होते हुए भी जिसके जीवन की जिस प्रकार उसने स्थिति देखी है, उसी प्रकार उसने उसको अनुकूलता प्रदान की है ।

मनुष्य भी सृष्टि के जीवों में एक जीव है और मनुष्य का जीवन भी प्रकृति ने ठीक उसी रूप में प्रवाहित किया है, जिस

प्रकार संसार के अन्य जीवों का। विश्व में जीवों का अन्त नहीं है और न उनकी कोई संख्या ही है। फिर भी वे जितने हैं, सब में मनुष्य ही बुद्धिमान है और इसीलिए वह संसार के अन्य प्राणियों का शासक है। मनुष्य शासक है, इसीलिए उसमें दुर्गुण और दुर्व्यसन हैं—उसके जीवन का अधिक अंश अप्राकृतिक एवम् अस्वाभाविक है। यह अवस्था सृष्टि के अन्य किसी भी प्राणी की नहीं पायी जाती। मनुष्य से लेकर पशु, वन-पशु, पक्षी और जल-जन्तु एवम् उगनेवाले पौदे और वृक्षों तक जितने भी प्राणी पाये जाते हैं, सब के जीवन का यदि गम्भीर अध्ययन किया जाय तो उनमें दो ही बातें मिलेंगी, जीवन और मरण। पौदे और वृक्ष मिट्टी और वायु से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। यही उनका जीवन है। उनके जीवन में यह नित्य का उनका काम है। इस भोजन से वे अपनी वृद्धि करते हैं, शाखा-प्रशाखाएँ उत्पन्न करते हैं और हरी-हरी पत्तियों के साथ झूम-झूमकर अपने जीवन पर मग्न होते हैं।

पक्षी प्रातःकाल अपने-अपने घोंसले छोड़ देते हैं। वे आकाश की ओर उड़ जाते हैं और फिर अपने घोंसलों से मीलों की दूरी पर चले जाते हैं। सारे दिन परिश्रम करके जब संध्या होती है तो वे अपने घोंसलों में आ जाते हैं। घोसलों से निकल, इधर-उधर दौड़-धूपकर, अपने पेट भरना और दिन समाप्त होते-होते अपने घोंसलों में फिर आ जाना ही उनका नित्य का काम है। अरण्यवासी पशु वन में रहते हैं। उनके रहने के स्थल इस प्रकार की सुविधा के साथ होते हैं कि वहीं उनको जल और हरी-हरी घास

मिल जाती है। वे दिन-भर इधर-उधर घूम-घूमकर अपना पेट भरते हैं और सूर्यास्त होने पर अपने-अपने स्थानों को चले जाते हैं।

अन्य प्राणियों की भाँति मनुष्य भी बाल्यकाल से लेकर जीवन-भर व्यस्त रहा करता है। उसके सम्मुख रोटी-वस्त्र का प्रश्न रहा करता है। इसी प्रश्न को हल करने में वह अपने जीवन का एक-एक दिन काटता है। वह नौकरी करता है, और अपने स्वामी को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता है। वह व्यापार करता है और प्रातःकाल से लेकर संध्या समय तक अथक परिश्रम करके अपने लिए रोटी का प्रबन्ध करता है। सारा संसार इसी प्रकार का जीवन बिता रहा है। सभी के सामने जीवन है। जीवित रहने के लिए भोजन और आहार आवश्यक है। इस आहार और भोजन का किस प्रकार संचय और एकत्रण किया जाय, इसीकी उधेड़-बुन में वह रात-दिन व्यस्त रहता है। प्रत्येक प्राणी का यही जीवन है।

संसार की दूसरी अवस्था है मृत्यु। यह अवस्था भयानक है, और इतनी भयानक कि कोई भी अपने जीवन में इसको न चाहेगा। प्रत्येक प्राणी इससे घबराता है—प्रत्येक जीव इसका नाम सुनकर और जानकर चौंकता है। जो बच्चा है, वह घबराता है; जो युवक है, वह घबड़ाता है; और जो वृद्ध है, वह भी उससे घबड़ाता है। इसीलिए मृत्यु का नाम बुरा है।

कोई भी मृत्यु नहीं चाहता। इसलिए प्रकृति प्रत्येक प्राणी में अप्रकट शक्ति का आविर्भाव करती है। प्रत्येक प्राणी उस शक्ति के द्वारा अपनी मृत्यु के पश्चात्, अपने स्थान पर अपना अस्तित्व

छोड़ जाता है। संतान पर माँ-बाप का जो प्रेम होता है वह क्यों होता है? माँ-बाप संतान के लिए कष्ट सहते हैं, अपमान और दुर्व्यवहार सहन करते हैं। क्यों सहन करते हैं, यह भी किसी ने सोचा है? लोगों की धारणा है कि सन्तान पर तो प्रेम होता ही है। परन्तु प्रश्न तो यही है कि यह प्रेम और अनुराग सन्तान के साथ क्यों होता है? यह प्रेम इसीलिए होता है कि सन्तान माँ-बाप के जीवन का अस्तित्व होती है। यह सन्तान ही जीवन का अस्तित्व होती है जिसे प्राणी अपनी मृत्यु के पश्चात् छोड़ जाता है। जिस समय वह मरता है, उस समय अपने स्थान पर अपने जीवन का अस्तित्व छोड़ते हुए सन्तोष अनुभव करता है।

प्रत्येक प्राणी जीवन और मरण—इन दोनों अवस्थाओं का भोग करता है। यही दो अवस्थायें विश्व में प्रत्येक जीव की होती हैं। मनुष्य की भी यही अवस्था है। इन्हीं दोनों प्रकार के जीवन का वह भी दुरुपयोग करता है। जिस प्रकार प्रत्येक प्राणी जीवन के लिए भोजन, आहार और जल का संग्रह करता है, रहने के लिए घर-मकान तथा स्थान का प्रबन्ध करता है। वह रात को सोता है परन्तु इसी की चिन्ता करता है। दिन होते ही वह जगता है और अपनी धुन में लग जाता है। समस्त दिन व्यस्त रहकर और अनेक प्रकार के उद्योग तथा प्रयत्न करके अपने खाने-पीने का प्रबन्ध करता है। मृत्यु के लिए भी उसे कुछ करना पड़ता है। मृत्यु एक दिन अवश्यम्भावी है, यह सब कोई जानता

है। इसी लिए उसके पूर्व ही, जो कुछ उसके लिए करना होता है, करने का प्रयत्न किया जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक जीव और प्रत्येक प्राणी सन्तान के लिए उत्सुक रहा करता है। जो सन्तानहीन होता है, वह दुखी रहता है और अपने जीवन की एक बहुत बड़ी कमी को अनुभव करता है। इस कमी के प्रति जो उसका मानसिक झुकाव रहा करता है, वह यह अर्थ रखता है है कि सन्तानहीन अवस्था में जो मृत्यु होती है उसका असन्तोष जीवन के साथ ही जायगा।

प्रत्येक प्राणी का, उसकी सन्तान से, कितना अधिक सम्बन्ध है, इस पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। अब देखना यह है कि सन्तानोत्पत्ति से काम का किस प्रकार का सम्बन्ध है।

प्रत्येक प्राणी में काम होता है और काम का अभिप्राय संतान की उत्पत्ति से है। मनुष्य जीवन में भी यही बात है। काम का जो उद्देश्य है और उसका जहाँ जैसा उपयोग होना चाहिए, वहाँ वैसा न होना अप्राकृतिक है और उसका दुरुपयोग है। मानव जीवन में उसके दुरुपयोग की अधिकता है। दुरुपयोग होने से उसका वास्तविक गुण नष्ट हो जाता है। मनुष्य उसके गुण का वास्तविक लाभ नहीं उठा सकता। उससे जो शान्ति-संतोष मिलना चाहिए वह नहीं पाता; केवल इसलिए कि वह उसका दुरुपयोग करता है। काम न केवल मनुष्य में होता है वरन् वह सृष्टि में सर्वत्र सभी प्राणियों में पाया जाता है। काम का उपभोग

भिन्न-भिन्न प्राणियों में किस प्रकार होता है, संक्षेप में यहाँ पर इसका विवेचन करना है। इस विवेचन से हमको काम की वास्तविकता का ज्ञान होगा—उसका उचित और प्रकृत उपयोग करना हम सीखेंगे।

जीव-जन्तुओं की भाँति वृक्षों और पौधों में भी जीवन होता है। उनकी उत्पत्ति में भी वही चमत्कार और प्रकृति की कला का निदर्शन है जो किसी भी प्राणी की उत्पत्ति में। वृक्षों और पौदों में जो पुष्प होते हैं, वे पुष्प ही उनकी उत्पत्ति की इन्द्रियाँ हैं। पुष्पों में कुछ पुरुष-पुष्प होते हैं और कुछ स्त्री-पुष्प। प्रायः यह भी होता है कि ये दोनों प्रकार के पुष्प, एक ही पुष्प में पाये जाते हैं। पुरुष-पुष्प Stamen और स्त्री-पुष्प Pistil कहलाता है। जिस एक ही पुष्प में दोनों प्रकार के पुष्प होते हैं, उसके भूमि पर पतित होने पर नवीन पौदे का जन्म होता है। भिन्न-भिन्न पुष्पों में ये दोनों ही प्रकार के पुष्प होते हैं। वे जब भूमि या मिट्टी में गिरते हैं और वायु के संयोग से दोनों एक-दूसरे से मिलते हैं, तो उनके इस मिलाप और संयोग से पौदे का अंकुर उगता है और धीरे-धीरे वह वृद्धि पाकर बड़ा होता है।

पौदों की अपेक्षा छोटे-छोटे जीवों में सन्तानोत्पत्ति के ढंग और नियम अधिक आश्चर्यजनक होते हैं। इन जीवों में जल-जंतु, मछलियाँ और साँप की तरह रेंगनेवाले कुछ कीड़े होते हैं। प्रत्येक जाति के इन जीवों में भी कुछ तो पुरुष होते हैं और

कुछ स्त्री। स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने स्त्रीत्व और पुरुषत्व का अपने-अपने शरीर से स्खलन करते हैं। उनका स्खलन इन्द्रियों Reproductive organs के द्वारा नहीं होता और उनको स्खलन के लिये मिलाप और संयोग की आवश्यकता नहीं होती। इन मछलियों की अवस्था ठीक उन पौदों की भाँति पायी जाती है जिनमें एक पौदे में ही स्त्री-भाग और पुरुष-भाग, उसके विभिन्न भागों में, पाये जाते हैं। वर्ष में एक बार उनके अंडे देने का समय आता है। उस समय स्त्री-मछली अंडे देती है और बहुत बड़ी संख्या में अंडे देती है। उनके अंडों की संख्या कभी-कभी कई सहस्त्र तक पायी गयी है। स्त्री-मछली अंडे देने के लिए स्थान खोजती है और उपयुक्त स्थान पाकर वह अंडे देती है। पुरुष उस समय उसके सन्निकट होकर उसका साथ देता है। स्त्री के अंडे देने पर पुरुष उन पर अपना वीर्य स्खलित करता है, जिससे उन अंडों में गर्भाधान होता है।

मेढकों में अंडे देने की व्यवस्था भी इसी प्रकार मिलती-जुलती पायी जाती है। जिस समय स्त्री अंडे देने की अवस्था में होती है, पुरुष उस पर सवार होता है और तब तक उस पर सवार रहता है जब तक कि वह अंडे दे नहीं चुकती। उसके अंडे दे चुकने पर पुरुष का वीर्य पतित होता है। इस प्रकार उन अंडो में गर्भाधान होता है।

मेढक-स्त्री जब अंडे देती है तो वह उन अंडों को लेकर बैठती है और मेढक-पुरुष स्त्री और अंडों की रक्षा करता है, और तब तक

रक्षा करता है जब तक अंडे बढ़ते और फूटते हैं। उसके पश्चात् दोनों मिलकर उन बच्चों का पालन-पोषण करते हैं।

कुछ मेढकों में—कहा जाता है कि—स्त्री और पुरुष का मिलना और स्पर्श करना गर्भाधान के लिए आवश्यक नहीं है। बिना किसी सम्पर्क और शारीरिक सहयोग के मछलियों की भाँति इनमें भी अंडों में गर्भाधान होता है। परन्तु यह अवस्था थोड़ी संख्या में पायी जाती है।

सर्पों में गर्भाधान काम-प्रवृत्ति के साथ पाया जाता है। यही अवस्था घोंघों की होती है। सर्प और घोंघा जाति के स्त्री-पुरुष में कर्मेन्द्रियाँ होती हैं। गर्भाधान के समय दोनों में कामोत्तेजना उत्पन्न होती है। उस समय स्त्री-पुरुष का सहयोग होता है। उनके स्त्री-पुरुष का सहयोग और प्रसंग अद्भुत होता है। जिस प्रकार के आचरण का उनमें व्यवहार पाया जाता है उसके उल्लेख करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। जानने की बात केवल इतनी है कि उनमें भोगेच्छा होती है और उस भोगेच्छा के तृप्त होने पर गर्भाधान होता है।

Cuttle fish की जाति में एक जीव होता है वह Argonout कहलाता है। उसकी काम-प्रवृत्ति और प्रसंग-क्रिया विशेषरूप से होती है। उस जाति के जीव में पुरुष स्त्री की अपेक्षा छोटा होता है। वह अपने आपको जब कामोत्तेजना में पाता है तो वह स्त्री के बाएँ होकर उसके साथ सहयोग करता है। उसके शरीर में छोटी-सी कामेन्द्रिय होती है। उसी के द्वारा वह स्त्री के साथ कामोपभोग करता है। पुरुष अपने प्रसंग द्वारा स्त्री में गर्भाधान करता है।

मक्खियों में भी काम की भावना होती है। उसी भावना और उत्तेजना में वे अंडे देती हैं। उनके मुख के आगे दो बाल सींग की भाँति होते हैं। उनसे मक्खियाँ सूँघने का काम लेती हैं और सूँघ कर ही वे कामोत्तेजना की प्रवृत्ति में अंडे देती हैं। जब कोई वायु सड़ती है और उस सड़ने की गन्ध उठती है तब उस गंध को वे सूँघती हैं और अंडे देती हैं।

मधु-मक्खियों में एक बड़ी विशेषता है। कुछ मधु-मक्खियाँ अपने क्वाँरेपन के साथ प्रायः अंडे देती हैं। क्वाँरेपन से अर्थ है बिना किसी अपने जातीय पुरुष के सहयोग और सम्पर्क के। उन अंडों से सदा पुरुष-मधु-मक्खियाँ उत्पन्न होती हैं। उनमें स्त्री-मधु-मक्खियाँ जब पुरुष से सहयोग और प्रसंग के पश्चात् अंडे देती हैं तो उनमें उसी भाँति स्त्री मधु-मक्खियों का जन्म होता है। उनमें विशेषता यही होती है कि वे अपनी इच्छा पर स्वयं, बिना पुरुष के सहयोग के, अंडे दे सकती हैं और उन अंडों से पुरुषों का जन्म होता है।

चिउँटी और चिउँटों का जीवन भी कम विचित्रता का नहीं होता। चिउँटी का विवाह होता है और विवाह-काल में बहुत से चिउटों के द्वारा उसका आलिंगन होता है। यह आलिंगन ही उनके काम-प्रवृत्ति के चरितार्थ करने की प्रक्रिया होती है। आलिंगन करनेवाले चिउँटों की उसके पश्चात् मृत्यु होजाती है। उन बहुत से चिउँटों के साथ सहयोग और आलिङ्गन से चिउँटी को जो उनका पुरुष-वीर्य प्राप्त होता है, उसको सुरक्षित रखने के लिए चिउँटी में वीर्य-सम्बन्धी पात्र होता है। चिउँटी उन प्राप्त किये वीर्यों को, एक

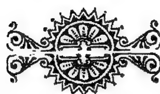
के पश्चात् दूसरे का, क्रमशः उपयोग करती है। इस प्रकार वह अंडे देती है। उसके अंडे देने का क्रम कई-कई वर्ष तक चला जाता है। वह एक बार सहयोग और आलिङ्गन के द्वारा संख्यातीत चिउँटों से जो गर्भाधान के लिए पुरुष तत्व प्राप्त करती है, उसके द्वारा उसके अंडे देने का क्रम ग्यारह-ग्यारह वर्ष तक और कभी-कभी उसके आगे भी चला जाता है।

पशुओं में भी दो प्रकार की जातियाँ होती हैं, स्त्री और पुरुष—नर और मादा। स्त्री और पुरुष मिलकर गर्भाधान करते हैं। उनमें काम का उपयोग पुरुष अपनी पुरुष-इन्द्रिय द्वारा, स्त्री की इन्द्रिय के साथ, करता है। पशुओं में स्त्री प्रायः काम की प्रवृत्ति को अनुभव करती है और उसकी कामोत्तेजना पुरुष में काम-प्रोत्साहन का भाव जागरित करती है। उस समय दोनों का सहयोग होता है। इस प्रकार स्त्री पुरुष के सहयोग से गर्भ धारण करती है। इन पशुओं के जीवन में विशेष ध्यान से देखने की यह बात है कि कोई भी पुरुष-पशु, स्त्री-पशु के साथ, बिना उसकी इच्छा और काम-प्रवृत्ति के, कामोपभोग नहीं करता। कुछ पशु इस प्रकार के भी पाये जाते हैं जिनमें पुरुष की काम-प्रवृति, स्त्री में काम-प्रवृति उत्पन्न करती है और दोनों में काम जागरित होने पर प्रसङ्ग होता है। यह प्रसङ्ग उनमें गर्भधारण के लिए होता है और उसके पश्चात् उस आवश्यकता की पूर्ति करके शान्त हो जाता है।

मनुष्य जाति में काम का प्राधान्य है। यह काम समस्त सृष्टि के जीवों और प्राणियों में गर्भ-धारण और उससे सन्तानोत्पत्ति

के अर्थ व्यवहृत होता है। परन्तु मानव-समाज में यह बात नहीं है। इसका कारण है। प्रकृति काम-भाव उत्पन्न करके स्त्री और पुरुष से यही आशा करती है कि वे सन्तानोत्पत्ति में इसका उपयोग करेंगे और यदि वे ऐसा करें तो वर्ष में केवल एक बार स्त्री-पुरुष को काम का प्रसङ्ग मिल सकता है। एक बार के सहयोग से जब स्त्री गर्भ धारण कर चुकती है तो फिर वह काम की प्रवृत्ति को अनुभव नहीं करती। नौ मास के पश्चात् जब स्त्री के बच्चा उत्पन्न होजाता है तब,उस प्रसव के पश्चात्, जब तक वह स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट होती है, तब तक स्त्री और पुरुष को संयम के साथ जीवन व्यतीत करना चाहिए। इसके उपरान्त फिर जब सन्तानोत्पत्ति की लालसा से गर्भ धारण करना हो, तब उन्हें फिर कामोपभोग करना चाहिए। यह काम का प्राकृतिक जीवन है। इस जीवन में रहकर स्त्री और पुरुष सदा स्वस्थ और नीरोग रह सकते हैं। उनके शरीरों में बल और पराक्रम का अभाव नहीं रह सकता। उनसे जो संतान उत्पन्न होगी, वह स्वस्थ, नीरोग, शक्तिशाली और पराक्रमी होगी। परन्तु मनुष्य का जीवन इस प्रकार का जीवन नहीं रहा और युगों से नहीं रहा। समाज के जीवन में विषय-वासना बहुत बढ़ गई है। समाज में स्त्री और पुरुषों का जीवन उनके बाल्य-काल से लेकर इस प्रकार के वातावरण में रहा करता है, जिसमें असमय अनावश्यक काम-प्रवृति को उकसाने वाले जीवन की भरमार रहती है। स्त्री और पुरुष को काम विषयक बातों का ज्ञान नहीं है। ज्ञान उत्पन्न करने के लिए उनको शिक्षा नहीं दी जाती। एक ओर यह है

और दूसरी ओर उनका जीवन काम-प्रवृत्ति को जागरित करनेवाले वायु-मण्डल में बीतता है। प्रत्येक स्त्री और पुरुष, युवक और युवती, जीवन के प्रारम्भ से लेकर आजीवन काम और विषय-भोग को आनन्द एवम् मनोरंजन के अर्थ में लिया करता है। वर्षों की बात तो कदाचित् मानव-समाज के इतिहास से ही उड़ गई होगी, एक मास भी संयम के नष्ट न करने की बात भी उपहास के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह गई। समाज के वर्तमान जीवन में संयम तो वही कहलाता है जो सप्ताह के सात दिनों में एक-दो दिनों की रक्षा कर सकता है! युवकों और युवतियों को संयम का नाम और उसकी आवश्यकता की शिक्षा उस समय सुनने और पढ़ने को मिलती है जब वे अपने शरीर को, विषयभोग की अधिकता से, कृश, अस्वस्थ और असमर्थ बनाकर, रोने और पछताने-मात्र के लिए शेष रखते हैं!! काम-विज्ञान की स्पष्ट शिक्षा जीवन के प्रारम्भ में बालकों और बालिकाओं को न होने से भविष्य में आनेवाले ये उसके दुष्परिणाम हैं!!!



कामेन्द्रिय—उसका संरक्षण-संवरण



शरीर के जिस अंग के सम्बन्ध में मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में अनभिज्ञ रहा करता है और कौतूहलवश उसका दुरुपयोग किया करता है, उस सम्बन्ध की सभी आवश्यक बातों का यहाँ पर विवेचन किया जायगा। इस विवेचन में केवल पुरुष-जीवन का ही दिग्दर्शन रहेगा। स्त्री-जीवन की वे बातें, जो स्त्री की इन्द्रिय से सम्बन्ध रखती हैं, इसके साथ न होंगी। इसका कारण यह है कि स्त्री की इन्द्रिय पुरुष-इन्द्रिय से बिभिन्नता रखती है। इसलिए दोनों के सम्बन्ध में एक साथ प्रकाश नहीं डाला जा सकता।

पुरुष की इन्द्रिय पोली और शुष्क करनेवाले तत्वों के द्वारा बनी हुई होती है। उसको पुरुषेन्द्रिय अथवा लिंग के नाम से पुकारते हैं। उसके दो उपयोग होते हैं—(१) मूत्र-परित्याग और (२) स्त्री-सहवास। उसमें रगें, नसें और रक्त होता है। जिस समय उसमें कामोत्तेजना होती है, उसमें रक्त भर जाता है और वह उस समय कठोर हो जाता है। इस उत्तेजना के पैदा होने के कई कारण हैं। कुछ तो वह उसमें स्वाभाविक होती है। वह आवश्यक है और वही उसका पुरुषत्व है। जब उसमें स्वाभाविक उत्तेजना आवेश में होती है, तो वह हानिकारक नहीं होती; किन्तु इस उत्तेजना का कारण जब मनोवृत्ति की चञ्चलता होती है और वह किसी कारण को पाकर उत्पन्न हो जाती है, तो वह स्वाभाविकता की अपेक्षा कुछ हानिकारक होती है। उसकी उत्तेजना पुरुष की मनोवृत्ति पर निर्भर होती है। जिस समय मनुष्य कामोत्तेजक बातों के सम्पर्क में जाता है, उस समय की उसकी उत्तेजना अस्वाभाविक और अनावश्यक होती है। यह उत्तेजना मन के शान्त और स्थिर हो जाने से शान्त हो जाती है। स्वाभाविक उत्तेजना छोटे-छोटे बच्चों में उस समय भी हुआ करती है जब उनको संसार की बातें समझने का ज्ञान भी नहीं होता और यही स्वाभाविक उत्तेजना आगे चल कर भी हुआ करती है। इस उत्तेजना के समय बालकों और युवकों को उसका अनुभव न करना चाहिए। वह अपने आप होगी और अपने आप शान्त हो जायगी।

पुरुषेन्द्रिय के अङ्ग पर हलकी और मुलायम चमड़ी होती है।

यह चमड़ी इन्द्रिय के अग्र-भाग तक जाकर तह के साथ समाप्त हो जाती है। जहाँ पर वह समाप्त होती है, उसके निकट का उसका भाग खलड़ी कहलाता है। मुसलमानों और यहूदियों में इस खलड़ी के कटा डालने का काम उनके धार्मिक संस्कारों में सम्मिलित है। उत्तर भारत के उच्च और कुलीन ब्राह्मणों एवम् मुसलमानों में, मूत्र-परित्याग करने के समय, उसके धोने की रीति है। कुछ लोग तो जल का प्रबन्ध न होने के कारण मिट्टी के टुकड़े का प्रयोग करते हैं। यह व्यवहार और प्रयोग उसके स्वच्छ रखने के लिए व्यवहृत होते हैं। वास्तव में इन व्यवहारों से स्वच्छता आती है या नहीं, इस पर कुछ लिखना अनावश्यक है। जो बात प्रथा के रूप में पायी जाती है; उसका प्रकट करना ही यहाँ अभीष्ट है। हाँ, यह अवश्य है कि खलड़ी के निम्न भाग में कुछ मल एकत्रित हो जाता है, उसको नित्य धोकर निर्मल कर डालना बहुत आवश्यक होता है। खलड़ी के निम्न भाग में छोटे-छोटे दाने होते हैं। उनके कारण मल उत्पन्न होता है। उस मल में गन्ध हुआ करती है। जहाँ उसके धोने में उपेक्षा की जाती है, वहाँ, उस खलड़ी के नीचे और आस-पास, बहुत-सा मल इकट्ठा हो जाता है और उससे प्रायः खुजली, दाद तथा जलन उत्पन्न हो जाती है। जो लोग असावधानी से साथ उसे खुजा डालते हैं, उनको कभी-कभी बड़े-बड़े कष्टों में पड़ जाना होता है। खुजलाहट में जब नाख़ून लग जाता है तो उसके फल-स्वरूप उसमें सूजन उत्पन्न हो जाती है। उससे वेदना उत्पन्न हो जाती है और वैद्यों और हकीमों की शरण लेनी पड़ती है।

कुछ लोगों की खलड़ी इतनी तङ्ग होती है कि वह इन्द्रिय के पीछे की ओर नहीं लौटती, जिससे उसके धोने और स्वच्छ रखने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। इस अवस्था में जो लोग उसे स्वच्छ नहीं करते, वे भूल करते हैं। यदि उसके धोने में असुविधा होती हो तो यह आवश्यक है कि किसी अच्छे डाक्टर के द्वारा उसको कटा दिया जाय। उसके कटा देने से अनेक असुविधाओं और बीमारियों से छुट्टी मिलती है।

लिङ्ग के जिस मार्ग से मूत्र-परित्याग होता है, इस मार्ग को मूत्र की नली अथवा मूत्र का द्वार कहते हैं। लिङ्ग की भाँति इस के भी दो उपयोग होते हैं (१) मूत्र-परित्याग करके मूत्राशय को ख़ाली करना और (२) वीर्य को निकालकर उसकी रगों को ख़ाली करना। मूत्र की नली के तीन भाग होते हैं। एक भाग से मूत्र, वीर्य या दूसरा कोई द्रव पदार्थ निकलता है और दूसरा उन कीटाणुओं का प्रवेश अवरुद्ध करता है, जिनसे पुरुषेन्द्रिय की विभिन्न बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। तीसरा भाग उस इच्छा पर शासन करने के लिए होता है, जो मूत्र-परित्याग करने अथवा कामोत्तेजना के साथ होती है।

लिङ्ग के अग्रभाग और जहाँ पर उसकी खलड़ी समाप्त होती है, उसके अन्तिम भाग के उस अंश को, जिसमें खलड़ी लौटकर पीछे आजाती है, सुपारी (Glans) कहते हैं। इस भाग में अत्यन्त छोटे-छोटे दाने होते हैं। उनसे जो पसेव और मल उत्पन्न होता है, उसको नित्य नियम से धोकर साफ़ कर देना चाहिए। न धोने से उस

अंश में जो अस्वच्छता पैदा होती है, वह लिंग के शक्ति-सम्वर्द्धन में बाधक होती है। जिस प्रकार मनुष्य का शरीर, नित्य स्नान करने से न केवल निर्मल और स्वच्छ रहा करता है, प्रत्युत वह स्वस्थ, नीरोग और शक्तिशाली बनता है। इसी प्रकार उस अंश की सफ़ाई से भी लिङ्ग को अवस्था होती है। यह अस्वच्छता कभी-कभी भीषण बीमारियों और पीड़ाओं का कारण हो जाती है। सुपारी का बहिरंग भाग, स्पर्श करने से अत्यन्त उत्तेजना बढ़ानेवाला होता है, इसलिए कि लिङ्ग की अत्यन्त सुकुमार रगें उस अंश में आकर समाप्त होती हैं। इसलिए इस अंश को धोने के अतिरिक्त और किसी समय स्पर्श न करना चाहिए।

पुरुषेन्द्रिय के मूल में दो अंडकोष होते हैं, वे लिङ्ग के दायें और बाएँ परस्पर मिले हुए होते हैं। जिस समय कामोत्तेजना उत्पन्न होती है और पुरुषेन्द्रिय स्फूर्ति में आता है, अंडकोष अपना संचित किया हुआ लसदार पानी मूत्र के द्वार में छोड़ते हैं, वह मूत्र-मार्ग से बाहर निकलता है और लिङ्ग में उत्तेजना एवम् स्फूर्ति पैदा करने के साथ-साथ यह लसदार पानी लिङ्ग को लसदार और चिकना बनाता है। अंडकोष वीर्य को छोड़ने के पूर्व इस पानी को निकालते हैं। यह पानी वास्तव में अंडकोष का मल होता है। कभी-कभी यह पानी वीर्य से पृथक होकर भी निकला करता है। अनुभव-हीन युवक इसको वीर्य समझकर घबरा जाते हैं। इस पानी के निकलने को वे वीर्य का निकलना समझकर उसकी चिकित्सा का प्रयत्न करने लगते हैं। युवक इस प्रकार की बीमारियों

की चिकित्सा समाचारपत्रों में छपे हुए विज्ञापनों के द्वारा करते हैं, जिनसे लाभ न होने की बात तो दूर रही, बिना किसी रोग के, वे रोग की औषधि किया करते हैं, और आर्थिक हानि उठाते हैं।

मूत्राशय के समीपस्थ दो छोटी-छोटी थैलियाँ होती हैं ये थैलियाँ वीर्य-कोष (Seminal Vesicles) कहलाती हैं। पुरुष का वीर्य अंडकोष में रहा करता है; और जिस समय वह स्खलित होता है, उस समय अंडकोष से वीर्य पहले वीर्य-कोष में जाता है और वीर्यकोष से लिंगेन्द्रिय-द्वारा बाहर आता है।

वीर्यकोष में भी एक प्रकार का पानी निकला करता है। यह पानी उसी का मल है जो Albumin और खारी पदार्थों के सम्मिश्रण से बना होता है। जब वीर्य वीर्य-कोष से निकलता है, तो उसके साथ ही वह पानी भी निकलता है। वीर्य-कोष का वह पानी व्यर्थ नहीं होता, उसका भी उपयोग होता है। प्रकृति ने कितना बड़ा उत्तरदायित्व अपने ऊपर रखा है, यह यहाँ पर देखने के योग्य है। जिस समय पुरुष स्त्री-सहवास करता है, उस समय उसका वीर्य स्त्री के गर्भाशय में पतित होता है, यदि उसके साथ-साथ, अथवा उसके कुछ ही आगे-पीछे, स्त्री का रज भी पतित होता है, तो वीर्य उसके सहयोग और सम्पर्क से गर्भ धारण करता है। किन्तु कुछ अवस्थाओं में वीर्य को रज की प्रतीक्षा में कई-कई दिनों तक ठहरना पड़ता है। वीर्य में सूक्ष्म कीटाणु होते हैं और वे जीवित होते हैं। यह निश्चित होता है कि जहाँ पर जीवन होता है, वहाँ पर जीवित रहने के लिए खाने और पीने की आवश्यकता होती है।

ये वीर्य-कीटाणु जब पुरुष के अंडकोष और वीर्यकोष में रहते हैं, उस समय वहाँ पर उनको आहार मिलता रहता है और जब वे स्त्री के गर्भाशय में पहुँचते हैं, यदि उनको रज की प्रतीक्षा न करनी पड़ी तब तो उनके आहार की आवश्यकता नहीं होती ; किन्तु जिन अवस्थाओं में वीर्य को रज की कई-एक दिनों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, उन अवस्थाओं में उन कीटाणुओं को आहार की आवश्यकता पड़ती है। उस समय उनको इस वीर्यकोष के पानी से आहार मिला करता है। उस पानी में इस प्रकार के परमाणु का सम्मिश्रण होता है जो वीर्य-कीटाणुओं के आहार का काम देता है।

प्रत्येक देश के युवकों और पुरुषों में स्वप्न-दोष पाया जाता है। यह क्या है और क्यों हुआ करता है, इस पर कुछ विचार करने की आवश्यकता है। स्वप्न-दोष सभी को नहीं होता। जिनको होता है, उसके कारण हैं। वीर्य अंड-कोष में जमी हुई अवस्था में रहा करता है। जिस प्रकार घी उष्णता पाकर पिघलता है और यदि स्थान पाता है तो वह बह निकलता है ; ठीक उसी प्रकार वीर्य की अवस्था है। कामोत्तेजना उत्पन्न करनेवाले विचारों और भावों से वीर्य को उष्णता प्राप्त होती है, जिससे वह अपने स्थान से विचलित हो जाता है। एक ओर वीर्य की यह अवस्था हो जाती है, और दूसरी ओर मनोवृत्ति काम-विषयक बातों की ओर चञ्चल रहा करती है। जब यह अवस्था युवकों और पुरुषों की रहा करती है, उस दशा में उनको रात में स्वप्न-दोष हो जाया करता है। दिन में जिस विषय की ओर उनमें आकर्षण रहा करता है और जिन बातों को वे सोचा

करते हैं, रात में वे उन्हीं का स्वप्न देखते हैं। स्वप्न में जान पड़ता है कि वे दिन में जिसके प्रति आकर्षित रहे हैं, रात को स्वप्न में उससे साथ उनका साक्षात होता है। स्वप्न के समय उनकी अवस्था ठीक उसी प्रकार की हो जाती है, जो स्त्री-प्रसङ्ग के समय हुआ करती है। लिंगेन्द्रिय में उत्तेजना पैदा हो जाती है और सोता हुआ पुरुष स्त्री-सहवास अथवा मैथुन की अवस्था का अनुभव करता है! उसी समय उनका वीर्यपात हो जाता है। वीर्य-स्खलन होते हुए, अथवा स्खलित हो जाने पर, वे जगा करते हैं। कुछ अवस्थाओं में वीर्यपात हो जाने पर भी उनकी नींद नहीं खुलती ; जागने पर जब वे अपना परिधान-वस्त्र अथवा धोती गीली पाते हैं, तब उनको स्वप्न-दोष हो जाने की बात मालूम होती है।

स्वप्न-दोष आचरण-हीन युवकों और पुरुषों में ही अधिक पाया जाता है। यदि उनमें मानसिक प्रवृत्तियाँ शुद्ध और पवित्र रहें तो स्वप्न-दोष उन्हें कभी नहीं हो सकता। स्वप्न-दोष एक बीमारी समझी जाती है। यह बीमारी शरीर को दुर्बल, शक्तिहीन और अकर्मण्य बनाती है। मस्तिष्क निर्बल होकर सोचने-विचारने की शक्ति खो देता है। यह बीमारी जब विद्यार्थियों को हो जाती है, तो उनके विद्यार्थी-जीवन को अत्यधिक हानि पहुँचाती है। जिनको यह रोग उत्पन्न हो जाय वे उसके होने का, सच्चाई के साथ, पहले अपने आप कारण सोचें और उस कारण में जिस प्रकार की मनोवृत्ति की अपवित्रता पावें, उसको भूलकर अपने विचारों को शुद्ध बनावें। यदि स्वप्न-दोष अधिक मात्रा में हो गये हों तो वे

उसकी चिकित्सा, सावधानी के साथ, किसी चतुर वैद्य के द्वारा करें। इस बीमारी में सदा स्मरण रखना चाहिए कि मनोवृत्तियों की अशुद्धता और वीर्य की दुर्बलता में यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इसलिए विद्यार्थियों, युवकों और पुरुषों को अपने विचार सदा शुद्ध बनाये रखना चाहिए।

कुछ लोगों की धारणा होती है कि यौवनावस्था में वीर्य का निकलना स्वाभाविक है। जब कोई युवा पुरुष कुछ दिनों तक ब्रह्मचर्य रहता है और उससे शरीर का वीर्य स्त्री-प्रसङ्ग के द्वारा नहीं निकल पाता तो वीर्य अपनी वृद्धि में अपने आप निकल जाता है। लोगों की यह धारणा उनके सम्बन्ध में हुआ करती है, जो पुरुष सदाचारी और शुद्ध विचारवाले हुआ करते हैं। उनका यह सोचना कितनी बड़ी भूल है! जो इस प्रकार की बातें सोचते हैं, उनको वीर्य, वीर्यकोष और वीर्य जिस प्रकार बनता है, इन बातों का यथोचित ज्ञान नहीं होता। मनुष्य जो भोजन करता है, उससे रक्त बनता है; और उस रक्त से वीर्य बनता है। वीर्य बनाना अंडकोष का गुण है। रक्त से जो वीर्य बनता है, वह अंडकोष में ही स्थित होता है। जब पुरुष विषयोपभोग करता है, तो उसके द्वारा अंडकोष में उष्णता का संचार होता है और उस उष्णता को पाकर अंडकोष का स्थित वीर्य पिघलकर वीर्यकोष में आ जाता है। वहाँ उसे कुछ और उष्णता प्राप्त होती है और जिससे वह लिंगेन्द्रिय में पहुँचकर बाहर होजाता है। जिस प्रकार विषयोपभोग की उष्णता अंडकोष में अपना प्रभाव डालती है, उसी प्रकार पुरुष की मानसिक वृत्ति का काम-विषयक

बातों की ओर का आकर्षण अथवा विषय-भोग की ओर मन का झुकाव वीर्य को अंडकोष से विचलित कर देता है। इस अवस्था में यह अपने स्थान से विचलित वीर्य, स्वप्न-दोष का रूप कैसे धारण कर लेता है, यह ऊपर की पंक्तियों में लिखा जा चुका है। यहाँ पर एक बात विशेष रूप के जानने की है। रक्त से जो वीर्य बनता है। वह अंडकोष में स्थित होता है और जब वह स्थित वीर्य निकल जाता है, तभी अंडकोष नया वीर्य तैयार करते हैं। यदि वीर्य अनावश्यक रूप में न स्खलित किया जाय, अथवा स्वप्न-दोष जैसे विकारों से वह व्यर्थ नष्ट न हो, तो अंडकोष नवीन वीर्य न तैयार करे। इसका फल यह हो कि वह रक्त जो वीर्य बनने में काम आता है, शरीर में न लग पाये। यदि अंडकोष द्वारा अधिक वीर्य बनने की आवश्यकता न पड़े, तो भोजन से जितना रक्त प्रस्तुत हो, वह सब का सब शरीर पुष्ट करने में काम आये। जो पुरुष कामी होते हैं, और अपने वीर्य का अधिक अपव्यय करते हैं, उनका शरीर इस लिए शुष्क और दुर्बल रहा करता है कि उनके शरीर का अधिकांश रक्त वीर्य बनने के काम आ जाता है। कुछ लोग एक भूल और करते हैं। जिनको वीर्य का यथावत् ज्ञान नहीं होता, वे समझते हैं कि वीर्य ही शरीर का राजा है, वीर्य ही शरीर का प्रकाश है। वीर्य के सम्बन्ध में समाज में दो भूलें की जाती हैं। दोनों भूलों का आधार एक ही है। और दोनों भूल करनेवाले व्यक्ति, वीर्य क्या है, इससे अनभिज्ञ हैं। जिनका विश्वास है कि वीर्य बढ़ जाने पर उसका निकल जाना स्वाभाविक है, वे तो बहुत ही बड़ी

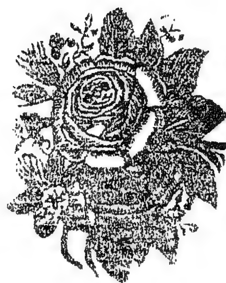
भूल करते हैं। इस विश्वास से युवकों की बहुत बड़ी क्षति होती है। जो उसका स्वाभाविक निकल जाना स्वीकार करते हैं, वे जान-बूझकर अनावश्यक विषयोपभोग करते हैं। वे सोचते हैं कि जब उसको निकल ही जाना है तो फिर उसका उपयोग क्यों न कर लिया जाय। युवकों का जितना जीवन नष्ट होता है, समाज की उस क्षति का उत्तरदायित्व किस पर है? दोनों प्रकार की भूल करनेवाले युवकों को यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि अंडकोष रक्त से वीर्य बनाया करते हैं और जब उस वीर्य का अपव्यय नहीं होता तो वह वीर्य, रक्त बनकर, रक्त में सम्मिलित हो जाता है; और शरीर को स्वस्थ, चैतन्य और स्फूर्ति पहुँचाता है। वीर्य के दो गुण होते हैं। (१) जब स्त्री-प्रसंग किया जाता है, तो स्त्री के गर्भाशय में पतित होकर और स्त्री के रज का सहयोग पाकर गर्भ धारण करता है जिससे मनुष्य-जीवन की एक नवीन उत्पत्ति होती है और (२) जब उसका पहला प्रयोग नहीं होता, तो फिर वह रक्त बनकर शरीर को सशक्त बनाता है।

कुछ इस प्रकार की अवस्थाएँ भी देखी जाती हैं जब मन में कोई विकार नहीं होते—वीर्य की निर्बलता भी नहीं होती; किन्तु रात में सोते हुए वीर्यपात हो जाता है। इसका कारण है; और उसको भी भली भाँति समझ लेना चाहिए। मूत्राशय और मलाशय के बीच में वीर्यकोष होता है। मूत्राशय और मलाशय के बीच में नौ इञ्च का अंतर होता है। मूत्राशय साधारणतया तीन इंच में और मलाशय दो इंच में होता है। किन्तु प्रायः मलाशय और

मूत्राशय भरकर, अलग-अलग चार-चार और पाँच-पाँच इंच तक फैल जाते हैं। इन दोनों के बढ़ जाने से, वीर्यकोष बीच में दब जाता है, और दबकर वह वीर्यपात कर देता है। इस प्रकार वीर्यकोष से वीर्य निकलकर लिंगेन्द्रिय-द्वारा बाहर होजाता है। इस अवस्था में जो सोते हुए वीर्यपात होता है उसमें और स्वप्न-दोष में अंतर है। स्वप्न-दोष तो केवल वही कहलाता है, जिसमें किसी स्वप्न के साथ, विषयोपभोग की सुख-कल्पना में, वीर्यपात होता है। किन्तु दोनों का फल एक ही है। जिनकी रात में प्रायः इस प्रकार की अवस्था हो जाती हो और वीर्यपात हो जाता हो, उनको चाहिए कि वे सोने से पूर्व मल और मूत्र का परित्याग कर लें; और रात को एक बार अवश्य जागकर मूत्र-परित्याग करें। इससे उनका जो अकारण रात को वीर्य-पात होजाता है, वह न होगा।

युवकों और युवाकालीन पुरुषों को इस प्रकार की बातों से सदा सावधान रहना चाहिए; और जिन बातों को वे न समझते हों, उनमें किसी की कपोल कल्पना और निर्मूल अनुमान पर विश्वास न करना चाहिए। उनको इन बातों पर बिना किसी संकोच के अपने घर के अनुभवशील बड़ों से सम्मति लेनी चाहिए। जो लोग इसमें संकोच और लज्जा-भाव अनुभव करते हैं, वे न केवल भूल करते हैं प्रत्युत अपने आप अपनी जीवन-शक्ति का नाश करते हैं। इन सब बातों के दुष्परिणाम स्वरूप उनपर क्या-क्या विपदाएँ आयेंगी, उस समय उनका कुछ अनुमान और उनकी आशंका भी नहीं की जाती। इसलिए उनको लज्जा और संकोच

के व्यर्थ आडम्बर को हटाकर इन बातों को समझ लेना चाहिए; और इस बात का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे उनका शरीर मिट्टी में न मिले।



काम-विज्ञान में भारत और पाश्चात्य जगत्



संसार की अनेक भाषाओं में अँगरेज़ी-साहित्य का स्थान ऊंचा है। जीवन के प्रत्येक अंग पर अँगरेज़ी-भाषा में इतना अधिक साहित्य प्रस्तुत हुआ है, जितना कदाचित् ही कहीं मिलेगा। साहित्य के अन्य अंगों के साथ-साथ, काम-विज्ञान (Sexual Science) पर भी अत्यन्त खोज और अनुसंधान के साथ लिखा गया है। वहाँ के लेखक इस विषय की मीमांसा करते-करते इस निश्चय तक पहुँचे हैं कि समाज में काम-विज्ञान की योग्यता उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार साहित्य के अन्य अंगों की। उनका विश्वास है कि काम-विज्ञान का यथार्थ ज्ञान होने

पर समाज से व्यभिचार दूर हो सकता है। समाज में अनुचित काम-पिपासा और उसका असंयत भाव केवल काम-विषय की अनभिज्ञता के कारण है। उन लेखकों ने अपने साहित्य के द्वारा समाज से यह भी अनुरोध किया है कि बालकों को किशोर-वय से ही काम-विज्ञान की शिक्षा देनी चाहिए। यह शिक्षा और अभिज्ञता समाज से दुराचार और दुर्गुणों के दूर करने में समर्थ होगी।

भारतीय समाज में काम-विज्ञान पर लिखी हुई पुस्तकें आश्चर्य और विस्मय के साथ देखी जाती हैं। जब कोई व्यक्ति किसी से पास काम-शास्त्र-सम्बन्धी कोई ग्रंथ देखता है, तो वह आश्चर्य के साथ उससे कहता है—काम-शास्त्र! उस समय उसकी अवस्था को देखकर जान पड़ता है, मानो उसने कोई बहुत बड़े आश्चर्य की बात देखी है। जब लोगों से काम-विज्ञान के ज्ञान की आवश्यकता पर बातें की जाती हैं, और जब वे सुनते हैं कि इसकी शिक्षा भी दी जासकती है, तो उनके उपहास का ठिकाना नहीं रहता। कुछ लोग तो इससे पूर्ण रूप से घृणा करते हैं। वे कहते हैं, बिना काम-शिक्षा के तो समाज की यह अवस्था है, फिर उसकी शिक्षा देना तो खुल्लम-खुल्ला कलियुग को निमंत्रित करना है!

भारतीय समाज की यह अवस्था है! इसका कारण क्या है? किसी भी समाज में कुछ लोगों का मत-वैषम्य होना और बात है; किन्तु पूर्ण समाज का विरोधी होना और बात है। काम-विज्ञान और उस पर लिखी हुई पुस्तकों से घृणा होने का कारण क्या

है? क्या काम-विज्ञान जीवन का एक अत्यन्त आवश्यक अंग नहीं है? समाज को स्वस्थ और आरोग्य रहने के लिए स्वास्थ्य-विज्ञान, आरोग्य-शास्त्र, पाक-शास्त्र और वैद्यक-शास्त्र की आवश्यकता है। धर्म-मार्ग के गूढ़ रहस्यों को जानने के लिए धर्म-शास्त्र और धर्म-विज्ञान की आवश्यकता है, आत्म-तत्व-विभूतियों को प्राप्त करने के लिए योग-शास्त्र की आवश्यकता है; किन्तु काम-विज्ञान, काम-शास्त्र और काम-विज्ञान पर लिखे हुए ग्रंथों की आवश्यकता क्यों नहीं है? जब हम देखते हैं कि काम-विषय को लेकर ही बालक और युवक अपने आचरणों को पतित करते हैं, जब हम देखते हैं कि काम-विषय को लेकर ही समाज में स्त्री-पुरुषों का जीवन अपवित्र और व्यभिचारी होता है; और जब हम देखते हैं कि काम विषय को लेकर ही समाज कामान्ध हो रहा है, तो फिर काम-विषय पर यथेष्ट प्रकाश डालने के लिए और उस विषय की वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस विषय के साहित्य की आवश्यकता क्यों नहीं है?

हिन्दी में काम-शास्त्र पर कुछ ग्रंथ पाये जाते हैं। काम-शास्त्र, रति-रहस्य, कोकशास्त्र जैसे नामों से वे विख्यात हैं। जिन्होंने इन शास्त्रों का अध्ययन किया है—जिनको इन ग्रंथों के पढ़ने का संयोग मिला है, उनको कदाचित् इस बात का पता होगा कि इन शास्त्रों के भीतर क्या लिखा गया है। भारत की पुरातन भाषा संस्कृत है। संस्कृत में कामशास्त्र और कोकशास्त्र लिखे गये हैं, उनका अत्यन्त संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है।

भारत के बहुत प्राचीन काल—संस्कृत युग—में एक बहुत बड़ा

शास्त्र लिखा गया। उसमें धर्म, अर्थ और काम तीनों प्रकार के जीवन का उल्लेख हुआ। वह शास्त्र एक लाख अध्यायों में समाप्त हुआ। उस बहुत बड़े शास्त्र से काम-विषय को लेकर उससे पृथक एक शास्त्र तैयार किया गया। यह शास्त्र भी एक सहस्र अध्यायों में लिखा गया। किन्तु यह ग्रन्थ भी बड़ा था, इसलिए उसका संक्षिप्त विवरण लेकर पाँचसौ अध्यायों में और उसके पश्चात् एक सौ पचास अध्यायों में लिखा गया। इसके पश्चात् अनेक ग्रन्थकारों ने उसके एक-एक भाग को पृथक-पृथक लेकर अपने-अपने ग्रन्थ बना डाले। किन्तु इन समस्त ग्रन्थों का लोप होगया। अन्त में उन विलुप्त ग्रन्थों में एक ग्रन्थ पाया गया। वह भी बड़ा ग्रन्थ था। इसलिए उसका संक्षिप्त उल्लेख करके वात्स्यायन मुनि ने 'वात्स्यायन काम-सूत्र' के नाम से एक ग्रन्थ तैयार किया। उस महाशास्त्र का यही एक अंश अब पाया जाता है।

वात्स्यायन मुनि संस्कृत-विद्या के बहुत बड़े पंडित थे। उन्होंने अपने इस ग्रन्थ की रचना इतने पाण्डित्य के साथ की है, जिसका समझना वर्तमान काल में संस्कृत के प्रसिद्ध आचार्यों के लिए भी कठिन कार्य है। हिन्दी-भाषा में जो काम शास्त्र पाये जाते हैं, वे इस प्राप्त और उन अप्राप्त ग्रन्थों के आधार पर लिखे हुए हैं। कुछ विद्वानों की धारणा है कि जिन्होंने इनको हिन्दी-भाषा में लिखा है, वे उन संस्कृत ग्रन्थों का ठीक-ठीक अनुशीलन नहीं कर सके, इसीलिए उन्होंने कुछ उनकी बातें और कुछ अपनी मिलाकर इस ग्रन्थ की रचना कर दी है।

जो हो, इन समस्त ग्रन्थों में स्त्री-प्रसंग और उसके भिन्न-भिन्न भेद-प्रभेद दिखाये गये हैं। उनका मूल विषय स्त्री-पुरुष का मैथुन और उसका विवेचन है। उसमें पुरुष और उनके भेद-प्रभेद, स्त्रियाँ और उनके भेद-प्रभेद, इसके साथ-साथ प्रसंग की क्रियाओं और उपक्रियाओं का उल्लेख किया गया है। इस प्रसंग से सम्बन्ध रखनेवाले प्यार, चुम्बन और आलिङ्गन की उनमें ख़ूब व्याख्या है। कुछ तो इतने अश्लील ग्रन्थ पाये जाते हैं कि यदि उनका प्रकाशन सरकार की ओर से रोक न दिया जाता तो समाज में उनके अत्यन्त अनुचित विष का प्रभाव एक दम विषाक्त होता। फिर भी इस प्रकार के ग्रन्थ छिप-छिपाकर बिकते हैं और पाये जाते हैं। इन अनुचित ग्रन्थों में प्रसंग-सम्बन्धी जो चित्र होते हैं, उनका विषमय प्रभाव होता है। ये ग्रन्थ अत्यन्त अश्लील, लज्जाजनक और व्यभिचार के प्रवर्त्तक होते हैं। इन अत्यन्त अश्लील ग्रन्थों के अतिरिक्त काम-शास्त्र के जो साधारण ग्रन्थ पाये जाते हैं, वे भी काम-विज्ञान की आवश्यक बातों पर प्रकाश नहीं डालते। जिन विषयों की उनमें व्याख्या है, वे मनुष्य-जीवन को कभी भी समुन्नत नहीं बनाते, वे पढ़नेवाले स्त्री-पुरुषों के जीवन में संयम का भाव नहीं उत्पन्न करते। इन ग्रन्थों ने स्त्रियों और पुरुषों को चार-चार भागों में विभाजित किया है। इनमें प्रत्येक प्रकार के स्त्री-पुरुषों की काम-प्रवृत्तियों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार की बातों का बुरा प्रभाव पुरुषों में, स्त्रियों के प्रतिकूल, इतना अधिक पैदा होता है कि वे आजन्म के लिए स्त्रियों से सशंकित होजाते हैं। इन विवेचनाओं से कोई भी पाठक

यह समझ सकता है कि स्त्री में काम-पिपासा अधिक होती है, उस पिपासा को बुझाने के लिए पुरुष में पुरुषार्थ की आवश्यकता है। उनकी विवेचना के अनुसार कुछ स्त्रियाँ इस प्रकार की भी पायी जाती हैं जिनकी काम-पिपासा की शान्ति कभी होती ही नहीं है। इन ग्रन्थ-कारों के नेत्रों में स्त्री विषय-वासना की मूर्तिमात्र है, और कुछ नहीं।

यही अवस्था सम्पूर्ण भारतीय समाज की है। ये काम-शास्त्र उस प्राचीन काल के निर्मित हैं जब काम-विज्ञान का विषय केवल यहीं तक परिमित था। अँगरेज़ी और अन्य प्राचीन भाषाओं के काम-विज्ञान के ग्रन्थों की अवस्था भी इसी प्रकार की अश्लीलता-व्यञ्जक पायी जाती है। भारतीय समाज में काम-शास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों के पठन-पाठन की बात जो विस्मय और उपहास-जनक समझी जाती है, उसका कारण यही है। यह कारण यहीं तक अपना विस्तार नहीं रखता। कुछ लोग, जो अँगरेज़ी के विद्वान समझे जाते हैं, और जिन्होंने इस विषय के ग्रन्थों का यथासाध्य अध्ययन भी किया है, उनसे भी जब काम-विज्ञान पर बातें होती हैं तो वे भी इस प्रकार की बातों का समर्थन करते हैं, जिनसे अनुभव होता है कि लोग काम-विज्ञान का अर्थ स्त्री-प्रसंग-सम्बन्धी बातों से ही लेते हैं। अभी थोड़े दिनों की बात है, एक प्रसिद्ध भारतीय-प्रकाशक, जो इस विषय के अच्छे अध्ययनशील व्यक्ति हैं और जिन्होंने इस विषय को लेकर कुछ लिखा भी है, की बातों से भी इसी प्रकार का आशय प्रकट होता था। इस प्रकार की बातों का और समाज के इस जीवन का अध्ययन करने से

मालूम होता है कि काम-विज्ञान और उसके सम्बन्ध की पुस्तकों के समझने में सर्वसाधारण बड़ी भूल करते हैं।

संसार का समुन्नत समाज आज बहुत आगे बढ़ा हुआ मिलता है। उसने जो साहित्यिक उन्नति की है, वह सर्वथा उपयोगी है। जो अपने स्वाभिमान के कारण अपने को ही सब कुछ समझा करते हैं, वे संसार की इन विभूतियों से वंचित रहते हैं। पाप और व्यभिचार की अपेक्षा समाज में सदाचार, स्वास्थ्य और पुरुषार्थ का मान बढ़ रहा है। पाप और व्यभिचार को बढ़ानेवाले जीवन के साधनों को समूल नष्ट करने के लिए समाज प्रयत्नशील है। जिस देश का समाज समुन्नत है, जिस देश के युवक-युवती, स्त्री-पुरुष स्वस्थ और पुरुषार्थी पाये जाते हैं, समझना चाहिए कि उस देश के समाज को सफलता मिली है और जिस देश के बालक-बालिकाएं, युवक-युवतियाँ और स्त्री-पुरुष, कामी, व्यभिचारी एवम् पुरुषार्थहीन देखे जाते हैं, समझना चाहिए कि उस देश का समाज उत्थान के मार्ग से बहुत दूर है।

काम-विज्ञान काम का वैज्ञानिक विश्लेषण करता है। वह काम का प्राकृतिक अर्थ लेता है और उसका उसी रूप में उपयोग करना आवश्यक समझता है। वह काम के अत्यन्त सूक्ष्म रूप को लेता है और विस्तृत एवम् व्यापक रूप तक उसकी विवेचना करता है। काम और कामेन्द्रिय तथा अङ्ग-प्रत्यङ्ग का निरूपण-विवेचन काम-विज्ञान है, उसके उपयोग कब किस अर्थ में होते हैं, उसका संरक्षण प्रतिपालन कैसे होता है, उसका दुरुपयोग करने से कैसे-कैसे

भीषण परिणामों का भोग करना पड़ता है ; इन बातों का सम्बन्ध बालकों और बालिकाओं से है। यह काम-विज्ञान है, जिसकी पर्याप्त जानकारी युवक और युवतियों को होनी चाहिए। पति और पत्नी के जीवन की एक-एक घटना काम-विज्ञान से सम्बन्ध रखती है। पति-पत्नी का जीवन किस प्रकार सुखी और सन्तुष्ट बन सकता है, दाम्पत्य जीवन के सुख-सन्तोष के नष्ट होने के क्या-क्या कारण हुआ करते हैं, पति-पत्नी का परस्पर क्या व्यवहार होना चाहिए और प्रत्येक को, एक-दूसरे के साथ, किस प्रकार का सम्बन्ध रखना चाहिए ; यही काम-विज्ञान है। इसका यथोचित ज्ञान होने पर ही पति-पत्नी का जीवन सुखी हो सकता है।

बालकों और युवकों के आचरण-भ्रष्ट होने के कारण क्या हैं, किस प्रकार की कुसंगति में पड़कर और क्या-क्या सीखकर वे पतित होते हैं, बालकों और युवकों को, पतित तथा आचरण-भ्रष्ट होने पर कैसे-कैसे कष्टों का सामना करना पड़ता है और किस प्रकार शरीर का बल, पराक्रम, स्वास्थ्य, आरोग्य नष्ट करके जीवन-भर के लिए रोने और पछताने का वे साधन पैदा कर लेते हैं, यह सब काम-विज्ञान है जिसका युवकों को जानना बहुत आवश्यक है। इसका पर्याप्त ज्ञान होने पर ही वे अपने बल-वीर्य की रक्षा कर सकेंगे। इसकी रक्षा कर सकने पर ही वे सुखी हो सकेंगे और अपने समाज तथा देश का कल्याण कर सकेंगे।

काम-विज्ञान की यह संक्षिप्त परिभाषा है, किन्तु यह विषय बहुत विस्तृत और गम्भीर है। इस विषय को लेकर अँगरेज़ी और

योरप की समुन्नत भाषाओं में बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे गये हैं। इस विषय के अंगरेज़ी में एक-दो नहीं; बहुत ग्रंथ हैं, वे ग्रन्थ कितने उपयोगी हैं, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार के सैकड़ों ग्रन्थ हैं जो इस जीवन की उपयोगिता का विश्लेषण करते हैं। इन ग्रन्थों को पढ़ने और अनुशीलन करने पर ही जाना जासकता है कि ये अपने विषय के कितने उपयोगी हैं और जीवन को सफल बनाने में किस प्रकार सहायक होते हैं। इन ग्रन्थों ने योरप के समाज को मर्यादा प्रदान की है और स्त्री-पुरुष के जीवन को, एक दूसरे के निकट, आदरणीय बना दिया है। इन्होंने उनके जीवन की कठिनाइयों को सरल किया है और मानव जीवन-यात्रा को स्वर्ग का माधुर्य प्रदान किया है। जो समाज, रात-दिन दाम्पत्य जीवन की छीछालेदर में पड़ा रहता है गार्हस्थ्य जीवन की आपत्तियों में पड़कर क्षण-क्षण पर ऊबा करता है, वह कभी भी वहाँ के समुन्नत समाज के सुख-सौभाग्य का अनुमान नहीं लगा सकता। वह अपने भाग्य को कोसना जानता है और संसार के इस जीवन को नरक की यात्रा समझता है।

प्राचीन युग और वर्तमान युग में बहुत बड़ा अन्तर हो गया है। उस युग में केवल यही एक धार्मिक अंकुश काम करता था, 'हमारे पूर्वजों ने यह बात कही है, इसलिए वह सत्य है और मान्य है।' किन्तु वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है, इसमें विश्लेषण और छानबीन की आवश्यकता है। 'स्त्रियाँ अवगुण और दुराचरण की मूर्ति होती हैं' यह जानकर,

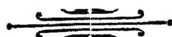
इस युग में, कोई इसपर विश्वास न कर लेगा। प्रश्न पैदा होगा, क्यों? यदि वैज्ञानिक विश्लेषण के साथ कोई यह प्रमाणित करेगा कि स्त्रियों का जीवन अवगुण और दुराचरण के लिए ही प्रकृति की ओर से निर्माण हुआ है, तो उसका समाज पर प्रभाव हो सकता है, अन्यथा समाज के जीवन पर उसका कोई रंग न होगा। प्राचीन युग का वह अंकुश उस युग के साथ-साथ चला गया। इस समय तो नवीन समाज के लिए उस नवीन साहित्य की आवश्यकता है जिसमें सत्य का अन्वेषण हो। इसलिए इस युग में न तो उन प्राचीन ग्रन्थों की आवश्यकता है और न उन ग्रन्थकारों की। पति-पत्नी के जीवन की पवित्र, स्पष्ट और सत्यालोचना की आवश्यकता है, जिसमें हम अपने नेत्रों से, अपने जीवन का अप्रकाश्य रूप मूर्तिमान देखें। ऐसा करने के लिए आवश्यक होगा कि हम स्त्री और पुरुष के जीवन का अधिक-से-अधिक अध्ययन करें और उसके गम्भीर-से-गम्भीर अन्तर-तर तक पहुँचने का प्रयत्न करें, सम्पूर्ण संसार के अर्वाचीन और प्राचीन साहित्य का अनुशीलन करें और फिर देखें कि उसमें सत्य क्या है और असत्य क्या है। ऐसा करने पर ही समाज का वास्तविक कल्याण किया जासकता है।

पाँच सहस्त्र वर्ष पूर्व लिखे हुए लैटिन अथवा संस्कृत के सूत्र पढ़कर और उनका अर्थ एवम् भावार्थ अँगरेज़ी अथवा हिन्दी में लिख देने से उस अङ्ग की साहित्यिक आवश्यकता की पूर्ति नहीं होसकती। Sexual physiology नामक अँगरेज़ी में जो पुस्तक है उसके आदरणीय लेखक ने अपनी अवस्था व्यक्त करते हुए लिखा है—

"It has been my painful professional duty to investigate the history and prescribe for thousand of ruined youngmen and not a few equally ruined young women, whose errors and infirmities would, in all human probability, never have occurred, had their parents or some intelligent friend in early life instructed them in what every child should know, as soon as it is able to understand—the uses of—the sexual organs."

अर्थात् "मेरे जीवन का यह एक प्रतिज्ञाबद्ध किन्तु दुखःपूर्ण कर्त्तव्य रहा है कि उन सहस्त्रों पतित और आचरण-भ्रष्ट युवकों और युवतियों के जीवन का अध्ययन करूँ और लिखूँ जिनकी भूलें और अनभिज्ञताएँ मनुष्योचित हैं, उनकी उन भूलों और अनभिज्ञताओं के सम्बन्ध में न तो उनके माँ-बाप में यह बात देखी गयी और न उनके किसी शुभचिन्तक में कि वे उनको बताते कि उनके प्रारम्भिक जीवन में, कामेन्द्रिय के समुचित उपयोग के सम्बन्ध में उनको क्या जानना चाहिए।" अस्तु।

काम-विज्ञान का विषय संसार में पवित्र और प्राकृतिक होता जारहा है। उसकी पवित्रता और स्वाभाविकता को समझने और व्यवहार में लाने से ही समाज सुखी होसकता है।



२७. मैंने अपने पति को किस प्रकार अपने वश में कर लिया
२८. तुम बोलती हो या शरबत घोलती हो
२९. मुझे कैसी दुलहिन चाहिये
३०. यदि मैं पति होती
३१. बलात्कार
३२. माँ, बाप और बच्चे
३३. बच्चों का पालन-पोषण कैसे करना चाहिये
३४. बालक-बालिकाओं के बालों की रक्षा
३५. बच्चों की आदतें
३६. कुरूप बच्चे भी सुन्दर बन सकते हैं
३७. इंगलैंड में बच्चों के गोद लेने का तरीका
३८. परदे पर एक नज़र
३९. लज्जा
४०. विधवा किसे कहते हैं
४१. सौतेली माँ
४२. स्त्रियाँ ही अपनी उन्नति की बाधक हैं
४३. भविष्य की माताओं से